पर्वे-पर्वे कथा

सुहाने पर्वो की मनमोहक कथाएँ

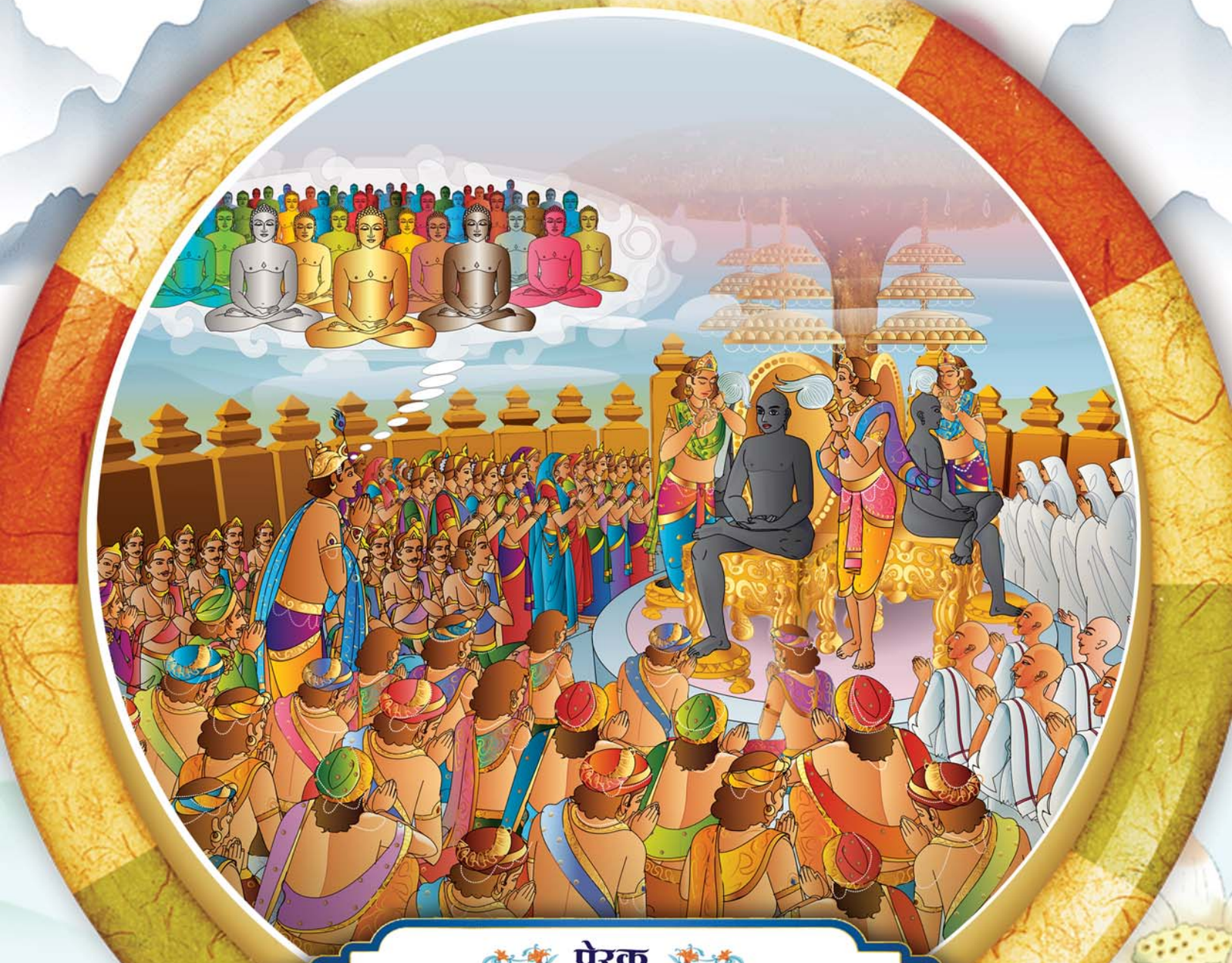

प्रेरक

प.पू.मुनिराजश्री कृपाबोधिविजयजी म.सा.

संपादिका

पू.साध्वीजीश्री गुप्तित्रयाश्रीजी म.

पू. मुनिराजश्री विवेकचंद्रविजयजी म.सा. द्वारा संपादित
'श्री आराधना तथा तप विधि' पुस्तक में से साभार

पर्व तप विधि

ज्ञानपंचमी तप की विधि : हर शुक्ल पंचमी को पांच वर्ष-पांच मास तक उपवास करो।

हर वर्ष (साल) का.सु.५ के दिन, ५१-साथिया, ५१-खमासमणा, ५१-लोगस्स काउसग्ग,
हर महिने ५-साथिया, ५-खमासमणा, ५-लोगस्स काउसग्ग,
२०-नवकारवाली 'ॐ ह्रीँ नमो नाणस्स' पद की गीनें।

मौन अेकादशी तप की विधि : मागशर सुद-११ से शरु करें।

हर सुद ग्यारह से ग्यारह वर्ष और ग्यारह मास तक उपवास तप करो।
११-साथिया, ११-खमासमणा, ११-लोगस्स काउसग्ग, २०-नवकारवाली 'श्री मल्लिनाथाय नमः'
पद की गीनें / १५० कल्याणक की गणणा की नवकारवाली मा.सु-११ को गीनें।

पोष दशमी तप की विधि

• मागशर वद-१० से तप शरु करे और हर वद-१० को अेकासना १० वर्ष १० महिनों तक करें।
हर मा.व.९-१०-११ के दिन ठाम चौविहार तीन अेकासना करे।
मा.व-९ शक्कर के पानी का अेकासना • मा.व.-१० खीरका अेकासना • मा.व.-११ पूर्ण भोजन अेकासना।
१२-साथिया, १२-खमासमणा, १२-लोगस्स काउसग्ग,
२०-नवकारवाली 'ॐ ह्रीँ श्रीं पार्श्वनाथ अर्हते नमः' पद की गीनें।

मेरु तेरस तप की विधि : गुजराती पोष वद-१३ से शरु करें और तेरह वर्ष तेरह महिनों तक यह तप करो।

१२-साथिया, १२-खमासमणा, १२-लोगस्स काउसग्ग,
२०-नवकारवाली 'श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः' पद की गीनें, पौषध करे...
शक्य हो तो पारणे के दिन अतिथि संविभाग करे।

रोहिणी तप की विधि : ७ वर्ष, ७ मास तक तप करो।

वैशाख सुद-३, रोहिणी नक्षत्र में ही तप शरु करे।
१२-साथिया, १२-खमासमणा, १२-लोगस्स काउसग्ग, २०-नवकारवाली 'श्री वासुपूज्य सर्वज्ञाय नमः'
पद को गीनें, जो एक भी रोहिणी नक्षत्र भूल जाओ तो पूरा तप दूबारा शरु करे।

चैत्री पूनम तप की विधि : पंदर वर्ष तक हर चैत्री पूनम को उपवास करो।

१५०-साथिया, १५०-प्रदक्षिणा, १५०-खमासमणा, १५०-लोगस्स काउसग्ग, १५०-पुष्प की माला चढाए,
जो १५० अेक ही साथ शक्य न हो तो १०, २०, ३०, ४०, ५० इस प्रकार भी कर सकते हैं (हर एक विधि में)
'श्री पुंडरीक गणधराय नमः' पद की २० नवकारवाली गीनें।

कार्तकी पूनम : हर साल का सुद-१५ के दिन

९-साथिया, ९-खमासमणा, ९-लोगस्स काउसग्ग, 'श्री शत्रुंजय तीर्थाधिराज' आराधना निमित्ते
काउसग्ग करुं ? आदेश पूर्वक काउसग्ग करे...सभी आराधना की विधि में
फल-नैवेद्य अनुकूलता मूजब बने उतना उत्कृष्ट चढाएं।

पर्वे-पर्वे कथा

सुहाने पर्वो की मनमोहक कथाएँ

प्रेरक

प.पू.आ.भगवंत श्रीमद् विजयसंयमबोधिसूरीश्वरजी म.सा.

के शिष्य प.पू.मुनिराजश्री कृपाबोधिविजयजी म.सा.

संपादिका

पू. साध्वीजीश्री रवि-राज-ज्योतिरत्नाश्रीजी म. के शिष्या

पू.साध्वीजीश्री गुप्तित्रयाश्रीजी म.

प्रकाशक/प्राप्ति स्थान

श्री राजेशभाई सुकृत निधि

C/o. जैनम् परिवार रिलीजीयस ट्रस्ट,

२२, नाकोडा पार्क, सिनेप्राईड की गली,

कृष्णनगर-नरोडा रोड,

अमदावाद-३८२ ३४६. मो. ८९८०१ २१७१२

पुस्तक का नाम	:	पर्वे-पर्वे कथा
प्रेरक	:	प.पू. मुनिराजश्री कृपाबोधिविजयजी म.सा.
लेखिका	:	पू. साध्वीजी श्री गुप्तित्रयाश्रीजी म.सा.
मूल्य	:	१७०/- R.
प्रकाशक	:	श्री राजेशभाई सुकृत निधि
पन्ने	:	४८

प्राप्ति स्थान

१)	जैनम् परिवार (अमदावाद)	मो. ८९८०१२१७१२
२)	परागभाई (अमदावाद)	मो. ९०९९३८२८२८
३)	कैवन (साबरमती)	मो. ९६६४५०५२६०
४)	उत्सवभाई (सुरत)	मो. ८०००० ७८४९५
५)	जैनम्भाई (मलाड)	मो. ९७६९२८९९४३
६)	विमल संघवी (दादर)	मो. ९३२३०००४४४
७)	भायखला एलर्ट ग्रुप (जिनेशभाई)	मो. ९८२१११०७३३
८)	(केशा) आणंद	मो. ९७१२८१७००१
९)	जय संघवी (जामनगर)	मो. ८३२०४४६८९७
१०)	प्रशांतभाई (वडोदरा)	मो. ९४२७०५४३२४, ७२६५००४४५७
११)	दर्शित (भुज)	मो. ९३७५५२३३७०

–: लाभार्थी :–

श्री भाभर श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ की ज्ञाननिधि में से

और विविध श्रुतभक्तों

की भूरि–भूरि अनुमोदना

परमतारक परमात्मा ने मोक्ष मार्ग पर आगे बढ़ते हुए स्वभावदशा में स्थिर होने के लिए और विभावदशा से मुक्त होने के लिए पर्वों की आराधना करने की बात बताई। बाल जीव भी इसमें जुड़ सके और आराधना का आकर्षण उत्पन्न हो इस हेतु पूर्व के महात्माओं ने प्रत्येक पर्व पर सत्य कथाओं की प्ररूपणा की। जैन शासन में तो ऐसी अनेक कथाएँ हैं। उनमें से कुछ पर्वों की सचित्र कथाएँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

आबालवृद्ध सभी जीवों को कथाएँ प्रिय होती हैं। आज की Practical Generation को भी ये कथाएँ पर्व-आराधना में जोड़ने के लिए उपयोगी बनेंगी। इन पर्वों की आराधना कैसे की जाए? ऐसी आराधना किसने की? उसे इसका क्या फल मिला? आदि सभी विषय यहाँ समाहित किए गए हैं। इससे वाचक वर्ग की सभी जिज्ञासाओं का समाधान हो जाएगा। साथ ही आराधकों के मन में भी आराधना के भाव उत्पन्न होंगे और स्थिर होंगे।

आराधना के प्रति कम होती रुचि पुनर्जीवित हो, सभी जीव जागृत होकर फिर से पर्व-आराधना से जुड़ें और लोगों की जिज्ञासा का समाधान हो इसी आशय से सचित्र कथा श्रेणी प्रस्तुत की जा रही है।

कैंसर की भयावह वेदना में भी सहायकतापूर्ण जीवन, समाधिमय परलोकगमन, तथा अपने उदार सुकृतप्रेमी स्वभाव से एक आदर्श द्रष्टान्त प्रस्तुत करने वाले स्व. श्री राजेशभाई रसिकलाल शाह की स्मृति में उनके दीक्षित परिवारजन प.पू.मुनिराज श्री कृपाबोधिविजयजी म.सा. (पुत्र म.सा.), पू.साध्वीजी श्री गुप्तित्रयाश्रीजी म. (श्राविका म.), पू. साध्वीजी श्री नम्राशयाश्रीजी म. (पुत्री म.) आदि की प्रेरणा से शासन सेवा, रक्षा एवं प्रभावना के चिरस्थाई एवं ठोस कार्यों की योजना क्रियान्वित हुई। उसके माध्यम से प.पू. संघस्थविर बापजी म.सा. तथा प.पू. सकलसंघहितचिन्तक प्रेम-भुवनभानु-पद्म-जयघोष-राजेन्द्र-हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के अनुग्रह एवं आशीर्वाद से प्रारम्भ हुई सचित्र पुस्तक श्रेणी की द्वितीय पुस्तक 'पर्वे-पर्वे कथा' प्रकाशित करते हुए हमें आनन्द हो रहा है। जैन कथानुयोग के विराट समुद्र में ऐसे लाखों कथारत्न बिखरे हुए हैं, जो जीवनभर हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं। श्रीसंघ की उदार सहायता प्राप्त होने पर ऐसी अनेक सचित्र कथा पुस्तकें श्रीसंघ के कर कमलों में प्रदान करने की हमारी भावना है।

प्रस्तुत कथा का संकलन-संपादक प.पू. संघस्थविर बापजी म.सा. समुदाय के प.पू. युवाचार्य नररत्नसूरीश्वरजी म.सा. की आज्ञानुवर्तिनी पू. साध्वीजी श्रीरवि-राज-ज्योतिरत्नाश्रीजी म. की शिष्या पू. साध्वीजी श्री गुप्तित्रयाश्रीजी म. ने किया है। उनके हम ऋणी हैं।

प्रस्तुत कथाओं का सम्पादन और संकलन प. पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयचन्द्रोदयसूरीश्वर जी म. सा. के शिष्य ''साहित्यरत्न'' पंन्यास भानुचन्द्रविजय गणिवर्य जी द्वारा सम्पादित-संकलित ''श्री बार पर्वनी कथा'' पुस्तक तथा देववन्दनमाला के आधार पर किया गया है। हम उनके भी ऋणी हैं।

हमारे प्रेरक प.पू. ग्रीष्मकालीन युवा उपधान तप प्रेरक आचार्य भगवन्त श्रीमद्विजयसंयमबोधिसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य प.पू. मुनिराज श्री कृपाबोधिविजयजी म.सा. के हम ऋणी हैं, जिन्होंने प्रसंगानुसार चित्रकला का सुन्दर मार्गदर्शन दिया। सुन्दर चित्रकारी करके देने वाले मयूरभाई सोनी तथा स्वच्छ एवं सुगठित मुद्रण करने वाले कमल प्रिन्टर्स के दिनेश मुडकर्णी का भी हम अत्यन्त आभार व्यक्त करते हैं। हिन्दी अनुवादक सूरत के पवन कुमार बैद का भी आभार।

हिन्दी आवृत्ति का उदारतापूर्वक लाभ लेनेवाले श्री भाभर श्वेतांबर मूर्तिपूजक जैन संघ और विविध श्रुतभक्तों का हम अत्यन्त आभार व्यक्त करते हैं, तथा बार-बार श्री संघ का ऐसा सहकार प्राप्त होता रहे, यह आशा रखते हैं।

लि..

राजेशभाई सुकृत निधि की ओर से जय जिनेन्द्र

उपकारी गुरु भगवंतो के चरणो में वंदन

संघस्थविर प.पू.आ. श्री विजयसिद्धिसूरीश्वरजी म.सा.

सिद्धांतमहोदधि प.पू.आ. श्री विजयप्रेमसूरीश्वरजी म.सा.

दीर्घसंयमी प.पू.आ. श्री विजयभद्रंकरसूरीश्वरजी म.सा.

न्यायविशारद प.पू.आ. श्री विजयभुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा.

गीतार्थमूर्धन्य प.पू.आ. श्री विजयजयघोषसूरीश्वरजी म.सा.

प्रशांतमूर्ति प.पू.आ. श्री विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.

सीमंधर जिनोपासक प.पू.आ. श्री विजयहेमचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.

युवाचार्य प.पू.आ. श्री नररत्नसूरीश्वरजी म.सा.

सहस्रकूटतपाराधक प.पू.आ. श्री विजयसंयमबोधिसूरीश्वरजी म.सा.

मातृहृदया साध्वीजी श्री रविप्रभाश्रीजी म.सा.

अनुक्रमणिका

नं	विषय	पन्ना नं.
१.	ज्ञानपंचमी पर्व	१
२.	श्री मौन एकादशी पर्व	८
३.	कार्तिक पूर्णिमा पर्व	१५
४.	पोषदशमी पर्व	२१
५.	मेरु त्रयोदशी पर्व	२७
६.	रोहिणी पर्व	३३
७.	चैत्री पूर्णिमा पर्व	४०
८.	अक्षय तृतीया पर्व	४३

ज्ञानपंचमी पर्व

ज्ञानं सारं सर्वं संसार मध्ये, ज्ञानं तत्त्वं सर्व तत्त्वेषु नित्यम।
ज्ञानं ज्ञानं मोक्षमार्ग प्रदर्शि, तस्माद् ज्ञाने पंचमी सा विधेया॥१॥

कार्तिक शुक्ल पंचमी का महत्त्व समझाते हुए पूर्वाचार्यों ने उक्त श्लोक का अर्थ बताते हुए कहा है कि, ''हे भव्य जीवों! संसार में जो ज्ञान है, वह तीनों लोक में सारभूत है। समस्त तत्त्वों में भी ज्ञान निरन्तर विद्यमान है, अतः ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान मोक्षमार्ग प्रशस्त करता है और सर्व अर्थ का साधन है। ज्ञान के सेवन से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। ज्ञान, अज्ञान आदि पापों का नाश करता है। इसीलिए कार्तिक शुक्ल पंचमी के दिन आलस्य और प्रमाद को त्यागकर ज्ञान की आराधना करने के लिए विधिवत् ज्ञान का तप अवश्य करना चाहिए।''

हम वरदत्त और गुणमंजरी की कथा के माध्यम से यह जानेंगे कि कैसे उन दोनों ने ज्ञान की आराधना की थी, और शिवसुख को प्राप्त किया था।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के पद्मपुर नामक एक नगर में विश्वप्रसिद्ध और गुणवान राजा अजितसेन का शासन था। उसकी यशोमती नामक रानी थी, जो चौसठ कलाओं की ज्ञाता, न्यायशील और चतुर शिरोमणि थी। उनका वरदत्त नामक एक पुत्र था। वह पुत्र रूप, लावण्य और गुणों से युक्त और बड़ा विनयवान था। पाँच धायमाताओं द्वारा लालन-पालन होते-होते वह आठ वर्ष का हुआ।

उसके माता-पिता ने उसे शुभ मुहूर्त में विद्याध्ययन के लिए पण्डितजी के पास भेजा। पण्डितजी भी उसे राजकुमार जानकर बहुत प्रयास करके पढ़ाने लगे, किन्तु कुमार को एक अक्षर भी समझ में नहीं आता था, फिर बड़े शास्त्रों का तो कहना ही क्या? ऐसा करते हुए राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुआ। उस समय अशुभ कर्मों के उदय से कुमार को कुष्ठ रोग हुआ। इस कारण उसका शरीर कुरूप और कान्तिहीन हो गया। इस कारण वह बहुत दुःखी हुआ और इस दुःख में ही अपना समय व्यतीत करने लगा।

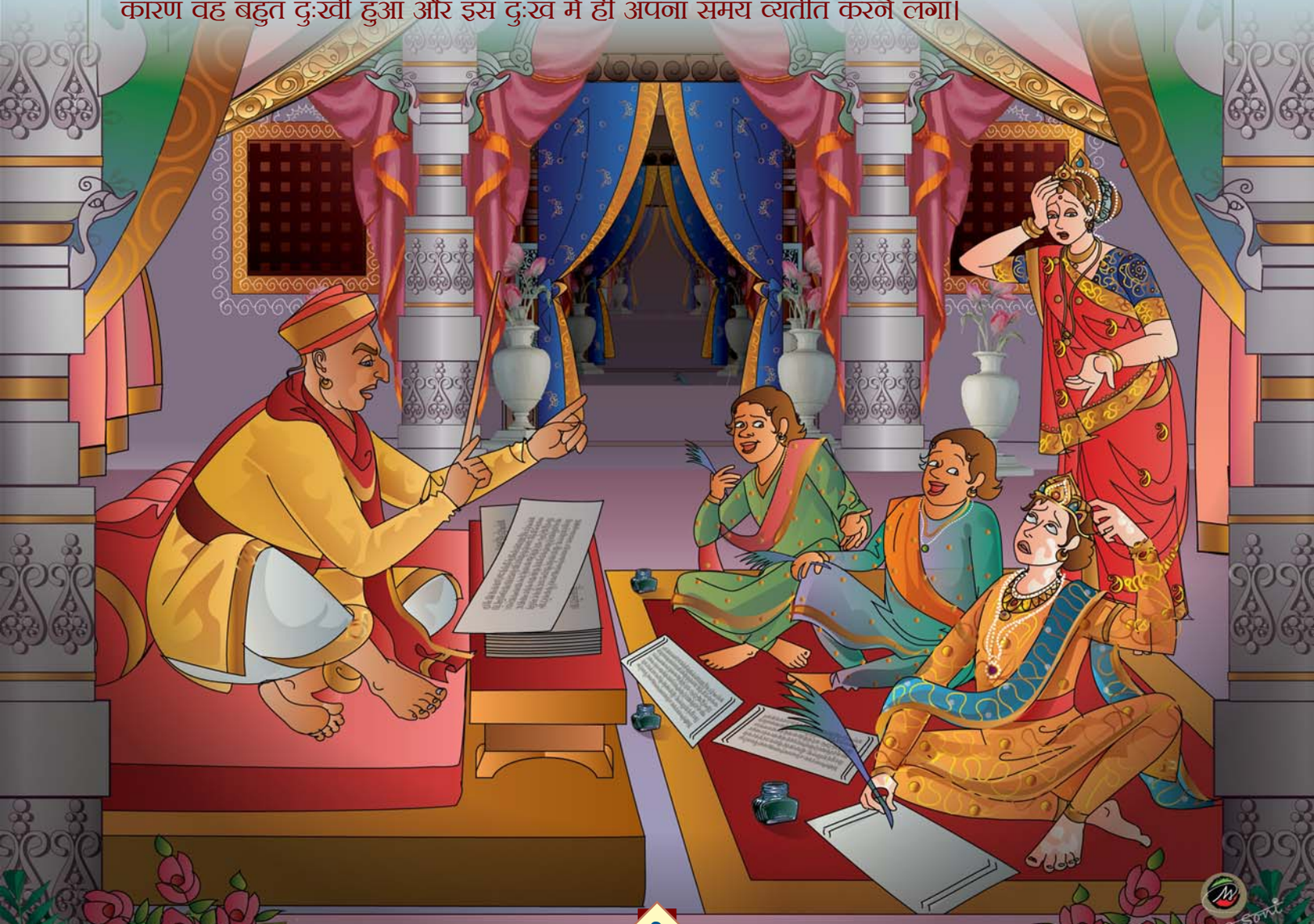

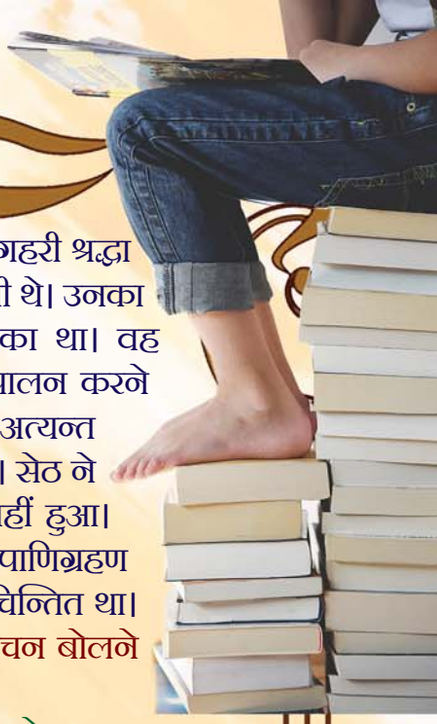

उसी नगर में सिंहदास नामक एक सेठ रहते थे। उन्हें जैन धर्म के प्रति गहरी श्रद्धा और भक्तिभाव था। वे अति धनवान थे और सात करोड़ स्वर्ण मुद्राओं के स्वामी थे। उनका नाम भी पूरे जगत् में विख्यात था। उनकी पत्नी का नाम कपूरतिलका था। वह सर्वगुणसम्पन्न, अपने पति के चित्त को समझने वाली, पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली महाशीलवान नारी थी। उनकी गुणमंजरी नामक एक पुत्री थी। वह अत्यन्त विनयवान थी, परन्तु वह भी शारीरिक व्याधि से पीड़ित थी। वह जीभ से गूंगी थी। सेठ ने अपनी पुत्री को निरोगी करने के लिए अनेक उपचार किए, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। समय बीता, उसने यौवन अवस्था में प्रवेश किया, किन्तु कोई भी उसके साथ पाणिग्रहण करने हेतु तैयार नहीं था। इस कारण सिंहदास सेठ का परिवार बहुत दुःखी और चिन्तित था। कहते हैं कि, ''एक याचक, दूसरा धूर्त्त, तीसरा रोग, चौथी मृत्यु और पांचवा मर्मवचन बोलने वाला-इन पाँचों से योगी भी उद्वेग का अनुभव करते हैं।''

योगानुयोग ऐसा हुआ कि, एक बार चार ज्ञान के धारक, समिति और गुप्ति के धारक विजयसेनसूरीश्वर जी महाराजा एक गाँव से दूसरे गाँव विचरण करते हुए, भव्य जीवों को प्रतिबोध करते हुए नगर के बाहर पधारे। सारे नगरजन तथा राजा भी अपने परिवार सहित मुनिराज की वन्दना करने के लिए गए। तीन प्रदक्षिणा देकर तथा विधिपूर्वक गुरु की वन्दना करके सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे।

गुरुदेव ने भव्य जीवों के उपकार करते हुए कहा कि, 'हे भव्य जीवों! यदि आप मुक्तिपद की इच्छा करते हैं, तो ज्ञान का अध्ययन, अध्यापन, श्रवण इत्यादि प्रकार से ज्ञान की आराधना के लिए उद्यम कीजिए, परन्तु ज्ञान की विराधना भूल कर भी मत कीजिए। क्योंकि जो प्राणी मात्र मन से ज्ञान की विराधना करते हैं, वे भवान्तर में शून्य मन के स्वामी बनते हैं, जो प्राणी विचार से ज्ञान की विराधना करते हैं, वे अन्धे, बधिर, गूंगे और कुरूप बनते हैं। और जो प्राणी वचन से ज्ञान की विराधना करते हैं, वे निर्बुद्धि और मूक बनते हैं, इस बात में कोई शंका नहीं है। जो प्राणी काया से ज्ञान की विराधना करते हैं, और ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करते, उन्हें परभव में कुष्ठ रोग, पित्त आदि महा भयानक रोग होते हैं, और वे क्षीण शरीर वाले होते हैं। जो प्राणी मन, वचन और काया के त्रिकरण योग से ज्ञान की विराधना करते, कराते या विराधना की अनुमोदना करते हैं, वे परभव में महामूर्ख बनकर उत्पन्न होते हैं। उसके पुत्र, पत्नी, मित्र इत्यादि का क्षय हो जाता है, धन-धान्य का नाश हो जाता है। उसके मन से चिन्ता का कभी अन्त नहीं होता, और उन्हें अनेक शारीरिक रोग होते हैं।

देशना सुनकर सेठ सिंहदास ने विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़कर गुरुदेव से पूछा, 'हे गुरुदेव! किस कर्म के उदय से मेरी पुत्री को कुष्ठरोग हुआ है?' किस भव के कर्म अब उदय में आए हैं? उसने कौन से अशुभ कर्म किए होंगे? उसे इस बीमारी से कब छुटकारा मिलेगा? ''गुरुदेव ने उत्तर देते हुए कहा कि, 'तुम्हारी बेटी ने पिछले भव में ज्ञान की विराधना बहुत की थी।' उन सभी पूर्वकृत कर्मों के कारण ही उसका शरीर रोगग्रस्त हुआ है।''

गुरुदेव ने उस कन्या के पूर्वभव के बारे में बताते हुए कहा कि, ''धातकीखण्ड के पूर्व भरत में अत्यन्त शोभायमान खेटकपुर नामक नगर है। वहाँ जिनदेव नामक सेठ रहते थे। वह बहुत सम्पत्तिवान थे। उनकी अत्यन्त सुन्दर, लावण्यमयी और सुकुमार सुन्दरी नामक पत्नी थी। उस सेठ के पाँच पुत्र थे, पहले पुत्र का नाम आसपाल, दूसरे पुत्र का नाम तेजपाल, तीसरे पुत्र का नाम गुणपाल, चौथे पुत्र का नाम धर्मपाल और पाँचवे पुत्र का नाम धर्मसार था। सेठ की लीलावती, शीलावती, रंगावती और मंगावती नामक चार पुत्रियाँ भी थीं।''

जिनदेव ने अपने पाँचों पुत्रों को विद्याभ्यास के लिए पण्डित के पास भेजा, लेकिन वे सभी आपस में खेलते रहते थे, उन्माद में आकर जो जी में आए बोलते रहते थे, पढ़ने का तो नाम ही नहीं लेते थे। न स्वयं पढते थे, न ही दूसरों को पढ़ने देते थे। विद्यालय में

शरारतें करते रहते थे, ज्ञान और ज्ञानी की आशातना भी करते रहते थे। पण्डितजी समझाते, या अच्छी सीख देते, या कभी पिटाई कर देते, तो माँ से झूठी शिकायतें भी कर देते थे।

पुत्रों की बात को सही मानकर माँ अपने बच्चों को गलत बात समझाती कि, ''पढ़ने-लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। संसार में तो जो मूर्ख होते हैं, वे ही परम सुखी होते हैं। इसलिए निश्चिन्त होकर जियो। जो पढ़ता है वह भी मरता है, और जो नहीं पढ़ता वह भी मरता है। इसलिए तुम किसी भी बात का शोक मत करो।''उसने पण्डित पर भी क्रोध करके पुत्रों के विद्याध्ययन के उपकरण जैसे पाटी (स्लेट), पोथी, कलम, दवात इत्यादि को आग में जलाकर नष्ट कर दिया। साथ ही पुत्रों को भी उल्टी सलाह देते हुए कहा कि, 'यदि पण्डित आए, तो उसे कंकर-पत्थरों से मारना।'

ये सारी बातें सेठ तक पहुँची। उसने अपनी पत्नी से कहा, ''यदि तुमने पाँचों पुत्रों को अनपढ़ और मूर्ख रखा, तो उनको कन्या कौन देगा? ये सब व्यापार के कामकाज में पत्र, लेखा-जोखा, हिसाब-किताब आदि का काम कैसे कर सकेंगे? चतुरों की सभा में तुम्हारे बेटे हास्य का पात्र बनेंगे। तुमने बहुत गलत कार्य किया है, और इसमें सारा दोष तुम्हारा ही है।'' सेठ की बातें सुनकर सेठानी, सेठ को खरी-खोटी सुनाने लगी। गलत आशय से वह स्त्री पति के साथ भी असभ्य भाषा में दुष्ट वचन बोलने लगी, इसलिए क्रोध में आकर उसके पति ने पास में पड़ा एक पत्थर उठाकर पत्नी के मस्तक के मर्मस्थान में मारा। इससे सेठ की पत्नी की मृत्यु हो गई।

वही स्त्री तुम्हारी बेटी के रूप में उत्पन्न हुई है। उसने पूर्वभव में ज्ञान की बड़ी अशातना की है, ज्ञान को जलाया, पण्डित को परेशान किया, उन कर्मों के उदय से उसे यह रोग हुआ है।

गुरुदेव की यह वाणी सुनते ही गुणमंजरी को ऊहापोह होने से जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। इससे उसने उसका पिछला भव देखा, और मूर्च्छित होकर जमीन पर गिर गई। शीत आदि उचित उपचारों से वह पुनः स्वस्थ हुई। उसके रोग को दूर करने के लिए सेठ ने गुरुदेव से उपाय पूछा। गुरुदेव ने कहा कि, ''ज्ञान की आराधना करने के लिए हर शुक्ल पक्ष की पंचमी के दिन विधिवत् चौविहार उपवास करके पुस्तक को पाट पर स्थापित कर, सुगन्धित फूल से उसकी पूजा करो। उसके बाद धूप देकर पाँच स्वस्तिक की रचना

करके, पाँच वर्ण का धान्य अर्पण करो, पाँच बाती वाले घी का दीया प्रकट करके पाँच प्रकार के फल और नैवेद्य अर्पण करके गुरु के चरणकमल में वन्दना करो। फिर हे भव्य जीव! ज्ञान के समक्ष भावपूर्वक ज्ञान की पूजा भक्ति करो। इस प्रकार पाँच वर्ष और पाँच महीने तक ज्ञानपंचमी की आराधना करो। यदि इस प्रकार हर महीने तप नहीं कर सको, तो प्रत्येक कार्तिक सुदी पंचमी के दिन यह तप आजीवन करो। इस प्रकार विधिवत् तप करने से सौभाग्य में वृद्धि होगी, सुन्दर रूप प्राप्त होगा, रोग का नाश होगा, धन-धान्य, पुत्र-पौत्र आदि की प्राप्ति होगी। साथ ही बुद्धि का विकास होगा और प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। अन्ततः पाँच ज्ञान की प्राप्ति होगी, और मोक्षसुख मिलेगा।

सेठ ने गुरुदेव से कहा, ''उसकी हर महीने उपवास करने की शक्ति नहीं है, इसलिए वह हर वर्ष उपवास करेगी।'' गुरुदेव ने कहा, ''पहले गुरुदेव से चौविहार उपवास का पच्चक्खाण लो, फिर ईशान कोण (पूर्वोत्तर दिशा) में बैठकर उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके ''ॐ ह्रीं नमो नाणस्स'' पद का दो हजार जाप करो। यदि अनुकूलता हो तो पंचमी के दिन पौषध के साथ उपवास किया जाए तो अति उत्तम। पारणे के दिन पौषध पारकर साधु भगवन्त को वोहराकर, साधर्मिक को भोजन कराकर, स्वामिवात्सल्य कराने के बाद ही पारणा करो।'' यह विधि सुनकर गुणमंजरी ने शुभ मन से गुरुमुख से कार्तिक सुदी पंचमी का तप अंगीकार किया।

गुणमंजरी की कथा सुनकर अजितसेन राजा ने भी गुरु महाराज से अपने पुत्र वरदत्त के बारे में पूछा। तब गुरु महाराज ने वरदत्त का पिछले भव बताते हुए कहा: ''इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के श्रीपुर नामक नगर में वसु नामक सेठ रहते थे। वे बहुत ऋद्धि और सम्पत्ति के स्वामी थे। उनके वसुसार और वसुदेव नामक दो पुत्र थे। एक बार दोनों भाई अपने मित्रों के साथ उद्यान में क्रीडा करने के लिए गए। वहाँ उन्होंने मुनिसुन्दरसूरि नामक एक आचार्य भगवन्त को देखा।दोनों भाइयों ने उनके पास जाकर उन्हें भावपूर्वक वन्दन किया। आचार्य जी ने भी उन्हें योग्य जीव जानकर धर्म का उपदेश किया। उन्होंने कहा कि, ''संसार के समस्त पदार्थ अनित्य हैं। प्रातः वेला में जो दिखाई देता है, वह मध्याह्न में दिखाई नहीं देता, और जो मध्याह्न में दिखाई देता है, वह शाम को या रात को दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है। इसलिए धर्मविहीन मनुष्य जीवन किसी भी काम का नहीं है। यह संसार झूठा है, इसमें धर्म के अतिरिक्त कोई सार नहीं है।''

इस प्रकार गुरु द्वारा दी गई देशना सुनकर दोनों भाइयों में वैराग्य का भाव जागृत हुआ। घर लौटकर उन्होंने माता-पिता से आज्ञा ली, और उन्हीं आचार्य से दीक्षा अंगीकार की। शुद्ध चारित्र का पालन करते हुए वे आचार्यश्री के साथ विचरण करने लगे। छोटे भाई वसुदेवमुनि ने निरतिचार भाव के साथ चारित्र का पालन किया और अपने बुद्धि बल से सारे सिद्धान्तों का अर्थ सहित अध्ययन करके बहुत प्रवीण हुआ और उच्च पदवी को प्राप्त हुआ। गुरु ने उसे योग्य समझकर आचार्य पदवी प्रदान की। तत्पश्चात् वे हमेशा पाँच सौ साधुओं को आगम की वाचना प्रदान करते थे।

एक बार आचार्य वसुदेव मध्याह्न वेला में सन्थारे पर सोये हुए थे। उस समय एक साधु उनके पास आया और आगम के अर्थ पूछने लगा। आचार्य ने भी तुरन्त उठकर साधु द्वारा पूछे गए प्रश्नों के अर्थ समझाये। उस साधु के जाने के बाद दूसरा साधु आया। उसको भी सन्तोषप्रद तरीके से समझाते हुए अर्थ बताए। उसके जाने के बाद तीसरा और बाद में एक के बाद एक कई साधु आकर अलग-अलग पद के अर्थ पूछने लगे। सबको उत्तर देकर वे पुनः आराम करने लगे। नीन्द आयी ही थी कि, एक और साधु वहाँ आया और पद का अर्थ पूछने लगा। इतना ही नहीं, वह एक के बाद एक ऐसे अनेक प्रश्न पूछता रहा, इस कारण आचार्य की नीन्द बाधित हुई। आचार्यजी ने उस साधु पर क्रोध करके मन में गलत और अनुचित विचार किए कि, मेरा बड़ा भाई कितना पुण्यशाली है, कितना सुखी है। वह मूर्ख है, इसलिए कोई उससे कुछ भी पूछने के लिए नहीं जात। इसलिए स्वच्छन्दी होकर वह अच्छे से खाना-पीना करता है। यदि मुझमें ऐसी मूर्खता होती, तो मैं भी शान्ति से रह सकता था।

इस आचार्य ने मन ही मन मूर्ख होने के लाभों पर विचार किया कि, यदि मूर्ख रहें, तो आठ प्रकार के लाभ होते हैं। (१) किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं रहती, (२) भरपेट भोजन कर सकते हैं, (३) किसी भी प्रकार का असन्तोष नहीं होता, (४) रात-दिन जब इच्छा हो तब सो सकते हैं, (५) कोई कार्य करने

योग्य है या नहीं, इसकी कोई समझ नहीं होती, इसलिए कोई कुछ पूछेगा ही नहीं, (६) मान-सम्मान मिले तो आनन्द नहीं होता और अपमान या उपेक्षा मिले तो क्रोध भी नहीं होता, (७) शरीर में प्रायः रोग होते ही नहीं, (८) शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। इन आठ गुणों के कारण मूर्ख प्राणी जगत् में सुख से जीता है। ऐसा सोचकर आचार्य ने मन ही मन निश्चय किया कि, अब से मैं किसी को एक भी अक्षर का पाठ नहीं दूँगा, और जितना आज तक पढ़ा हूँ, उन शास्त्रों को भी मैं याद नहीं करूँगा, सब कुछ भूल जाऊँगा, तथा नए ग्रन्थ भी नहीं पढ़ूँगा और न ही अभ्यास करूँगा।

ऐसा सोचकर मन में क्रोधित होकर उस आचार्य ने बारह दिन तक मौन धारण किया, और किए हुए पापों की आलोचना किए बिना अशुभ ध्यानपूर्वक मृत्यु को प्राप्त हुआ। चारित्र की आराधना के प्रभाव से हे राजा! वह आचार्य आपका पुत्र हुआ। अपने पूर्वकृत कर्मों के कारण वह अत्यन्त मूर्ख बना, लोगों में हास्य का कारण बना और इस महारोग से पीड़ित हो रहा है। उपरान्त, उस आचार्य का बड़ा भाई, जो मूर्खवत् था, वह मरकर मानसरोवर में हंस के रूप में पैदा हुआ। अतः कर्म की गति बड़ी विचित्र है।

गुरुदेव के ये वचन सुनकर वरदत्त को भी जातिस्मरण ज्ञान हुआ, और वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। क्षण मात्र में वह सचेत हुआ, तो उसे अपने पूर्वभव का स्मरण हुआ, और वह गुरु के प्रति बहुमानभाव अनुभव करने लगा। पुत्र के रोग के निवारण और समाधि के लिए गुरु से पूछने पर उन्होंने कहा कि, ''तप करने से सारे दुःख मिट जाते हैं, सारे पाप भी दूर हो जाते हैं।'' तप अत्यधिक फलदायक है। वरदत्त ने अपनी शक्ति के अनुसार हो सके ऐसे तप के बारे में गुरुदेव से पूछा। तो गुरु बोले, ''जो तप गुणमंजरी कर रही है, वही तप हर कार्तिक सुदी पंचमी को तुम्हें आजीवन करना चाहिए। वरदत्त ने भी वह तप विधिवत् प्रारम्भ किया। तप के प्रभाव से उसका शरीर सारे रोगों से मुक्त हो गया और उसका रूप भी खिल उठा। वरदत्त में रूप और बुद्धि के समन्वय के कारण हजारों कन्याओं ने स्वयंवर में बड़े आडम्बर के साथ महोत्सव करके उसके साथ पाणिग्रहण किया। पुरुष की बहत्तर कलाओं का अध्ययन करके वरदत्त उन कलाओं में प्रवीण हुआ।''

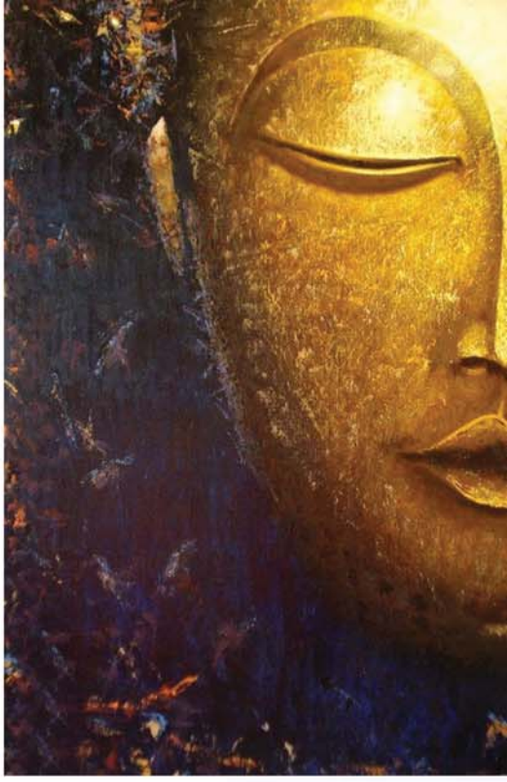

समय बीता, वरदत्त के पिता को वैराग्य हुआ, अतः उन्होंने वरदत्त को राज्य सिंहासन पर बिठाया, स्वयं ने चारित्र धारण किया और सुख समाधिपूर्वक चारित्र का पालन करते हुए विचरण करने लगे। वरदत्त भी प्रतिवर्ष ज्ञानपंचमी के तप का विधिपूर्वक पालन करते हुए प्रजा को सुख प्रदान करके बहुत यश और कीर्ति को प्राप्त करने लगा। वरदत्त ने अनेक वर्षों तक राज्य का सुख भोगा, फिर उचित निमित्त मिलने पर संसार को असार समझकर अपने पुत्र को राजगद्दी सौंपकर गुरु से दीक्षा अंगीकार की।

उधर गुणमंजरी भी विधिपूर्वक ज्ञानपंचमी का तप शुद्ध भाव से कर रही थी। तप के प्रभाव से उसके शरीर के भी सारे रोग दूर हो गए, और लावण्यमय रूप की प्राप्ति हुई। उसके पिता ने उसका विवाह जिनचन्द्र नामक एक महान ऋद्धिवाले व्यापारी के साथ महोत्सवपूर्वक करवाया और दहेज के रूप में बहुत द्रव्य दिया। गुणमंजरी अपने पति के साथ चिरकाल तक संसार के सुख भोगती रही। साथ ही साथ पंचमी की आराधना भी विधिपूर्वक करती, और सुकृत मार्ग पर धन का सद्व्यय करती थी। समय बीतने के बाद उसने सद्गुरु की देशना सुनकर दीक्षा ग्रहण की, और निरतिचार चारित्र का पालन किया, और अन्त समय में समाधि मरण को प्राप्त हुई।

इस तरफ वरदत्त मुनि ने भी समाधि मरण को प्राप्त किया, और दोनों पाँचवें अनुत्तर के वैजयन्त विमान में ३२ सागरोपम के सुख भोगने लगे।

पूर्व महाविदेह में पुष्कलावती विजय के पुण्डरिगिणी नगर के राजा अमरसेन, जैन धर्म का पालन करते थे और वे सर्वगुण सम्पन्न थे। उनकी पटरानी का नाम गुणवन्ती था। देवलोक में अपना आयुष्य पूर्ण करके वरदत्त का जीव गुणवन्ती रानी की कुक्षि में च्यवित हुआ। सम्पूर्ण गुणों से शोभित उसके जीव ने नौ महीने बाद जन्म लिया। माता-पिता ने उसका जन्म महोत्सव करके उसका नाम शूरसेन रखा। पाँच-पाँच धायमाताओं के द्वारा पालित होते हुए वह बारह वर्ष का हुआ। विद्यार्जन करके वह सभी कलाओं में प्रवीण हुआ। युवावस्था को प्राप्त होने पर उसके पिता ने चौसठ कलाओं में दक्ष ऐसी एक सौ सौन्दर्यवान कन्याओं के साथ उसका पाणिग्रहण कराया, और उसे राजपाट सौंपकर पिता ने परलोक गमन किया।

कुछ ही समय के बाद सूर्य सदृश श्री सीमन्धरस्वामी भगवान का वहाँ समवसरण हुआ। वनपालक ने राजा शूरसेन को प्रभु के शुभागमन की बधाई दी। देवों ने वृत्ताकार समवसरण की रचना की। करोड़ों देव प्रभु की सेवा में उपस्थित थे। राजा ने भी वनपालक को बहुत प्रीतिदान देकर खुश किया। प्रभु के आगमन के समाचार से राजा अतिहर्षित हुए, और सपरिवार अत्यन्त आडम्बरपूर्वक प्रभु को वन्दन करने के लिए गए। प्रभु के पास जाकर पाँच अभिगम जैसे कि पगरखे, तलवार, मुकुट, छत्र और चँवर आदि से रहित होकर वन्दना की और यथास्थान धर्मदेशना श्रवण के लिए बैठे। भगवान ने भी देशना में सौभाग्य पंचमी की आराधना के बारे में समझाते हुए कहा कि, ''ज्ञानपंचमी के तप से सारे दुःख खत्म हो जाते हैं, और जीव सौभाग्यलक्ष्मी को प्राप्त करता है। वरदत्त ने यह तप करके सुखसम्पदा को प्राप्त किया।''

यह सुनकर राजा शूरसेन ने प्रभु से पूछा कि, ''यह वरदत्त कौन है? उसके चारित्र का हमें श्रवण कराइये।'' भगवान ने भी समस्त सभा को वरदत्त के पूर्वभव का श्रवण कराया, और कहा कि, ''हे राजन! वरदत्त का जीव तुम स्वयं ही हो।''

इस प्रकार भगवान से तप के प्रभाव के बारे में श्रवण करके कईं जीव प्रतिबोधित हुए, और पंचमी के तप को अंगीकार किया। राजा शूरसेन भी प्रतिबोधित हुए, और दस हजार वर्ष तक राज्यलक्ष्मी का पालन करते हुए अनेक सुकृत किए। तत्पश्चात् अपने पुत्र को राज्य सौंपकर बड़े आडम्बर के साथ सीमन्धरस्वामी से चारित्र अंगीकार किया। एक हजार वर्ष तक चारित्र पर्याय का पालन करके घनघाती कर्मों को खपाकर केवलज्ञान को प्राप्त किया, और मोक्षसुख को प्राप्त हुए।

जम्बूद्वीप के महाविदेह में उमा नामक रमणीय विजय में शुभा नामक नगरी बहुत विख्यात है। वहाँ के राजा का नाम अमरसिंह और उनकी पटरानी का नाम अमरावती था। वह शील से अलंकृत थी और अप्सरा जैसी मनोहर थी। उनकी कुक्षि में गुणमंजरी का जीव देवलोक से च्यवित होकर पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। नौ महीने बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। माता-पिता ने उसका नाम सुग्रीवकुमार रखा। कुमार, शुक्ल पक्ष के चन्द्र की भांति दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए रूप-लावण्य और गुणों से शोभित होकर बीस वर्ष का हुआ। संसार से वैराग्य लेकर पुत्र को राज्य पर स्थापित करके राजा अमरसिंह ने दीक्षा ग्रहण की और निरतिचार चारित्र का पालन करते हुए मोक्ष गमन किया।

राजा सुग्रीव (गुणमंजरी के जीव) ने अनेक सुकन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया, और संसार के सुख भोगते हुए उसके चौरासी हजार पुत्र हुए। राजा सुग्रीव ने बड़े पुत्र को अपना राज्य सौंपा, और अन्य छोटे पुत्रों को अलग-अलग राज्यों में प्रतिष्ठित किया। और स्वयं सुगुरु के पास जाकर चारित्र अंगीकार कर लिया। सुन्दर चारित्र का पालन करके घनघाती कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त हुए, और भव्य जीवों को प्रतिबोधित करते हुए एक लाख पूर्व तक चारित्र का पालन किया। फिर समस्त कर्मों का क्षय करके वे मोक्षपद को प्राप्त हुए और अजरामर हुए।

इस प्रकार पंचमी की आराधना से भव्य जीवों को अत्यधिक सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसलिए लोक में ज्ञानपंचमी का नाम सौभाग्यपंचमी के रूप में भी प्रसिद्ध है। अतः हे भव्य जीवो! पंचमी के तप की विशेष आराधना करो और उसके प्रति आदर रखो। संसार के भयों के नाश के लिए यह अत्यन्त अद्भूत तप है, और उसकी आराधना से जीव इस भव में और परभव में अनन्त सुख और सम्पदा को प्राप्त करता है।

श्री मौन एकादशी पर्व

श्री गौतमस्वामी ने प्रभु महावीरस्वामी की वन्दना करके पूछा कि, ''हे भगवान! हे अनन्त ज्ञानवन्त! मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी का पौषध करने से क्या फल प्राप्त होता है।'' तब प्रभु ने कहा, ''हे गौतम! सुनोः''

एक बार द्वारिका नगरी में श्री नेमिनाथ भगवान पधारे। श्रीकृष्ण ने प्रभु को तीन प्रदक्षिणाएँ दीं, और

विनयपूर्वक वन्दन करके देशना श्रवण करने के लिए बैठे। देशना के बाद उन्होंने प्रभु से पूछा कि, ''हे स्वामी! वर्ष के ३६० दिनों में ऐसा कौनसा दिन है, जिस दिन अल्प तप करने पर भी उस तप का बहुत फल प्राप्त होता है?'' तब प्रभु ने उनको बताया कि, ''मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन अल्प तप करने से भी बहुत पुण्य मिलता है। इसलिए यह पर्व सभी पर्वों में उत्तम है। इस दिन आराधना करना सर्वथा योग्य है।''

इस भरतक्षेत्र में वर्तमान चौबीसी के अठारहवें तीर्थंकर श्री अरनाथ प्रभु ने इसी दिन दीक्षा ग्रहण की थी, इक्कीसवें तीर्थंकर प्रभु नमिनाथ को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथ का जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान भी इसी दिन हुआ है। इस प्रकार इस दिन कुल पाँच कल्याणक हुए हैं। इसी प्रकार, पाँच भरतक्षेत्र और पाँच ऐरावत क्षेत्र मिलाकर दस क्षेत्रों में पाँच-पाँच मिलाकर इस दिन कुल पचास कल्याणक हुए। ये पचास कल्याणक वर्तमान चौबीसी के हुए। इसी प्रकार अतीत (भूतकाल) और अनागत (भविष्य काल) चौबीसी के भी पचास-पचास गिनने से तीनों काल के कुल मिलाकर डेढ़ सौ कल्याणक होते हैं। अतः यदि इस दिन एक उपवास करें, तो डेढ़ सौ उपवास का फल प्राप्त होता है। इसलिए पुण्यशालियों को इस दिन अन्य सांसारिक कार्य की अनुमति नहीं देनी चाहिए और मौनपूर्वक चौविहार उपवास करना चाहिए। साथ ही जयणा सहित आठ प्रहरी अहोरात्रि पौषध करना चाहिए।

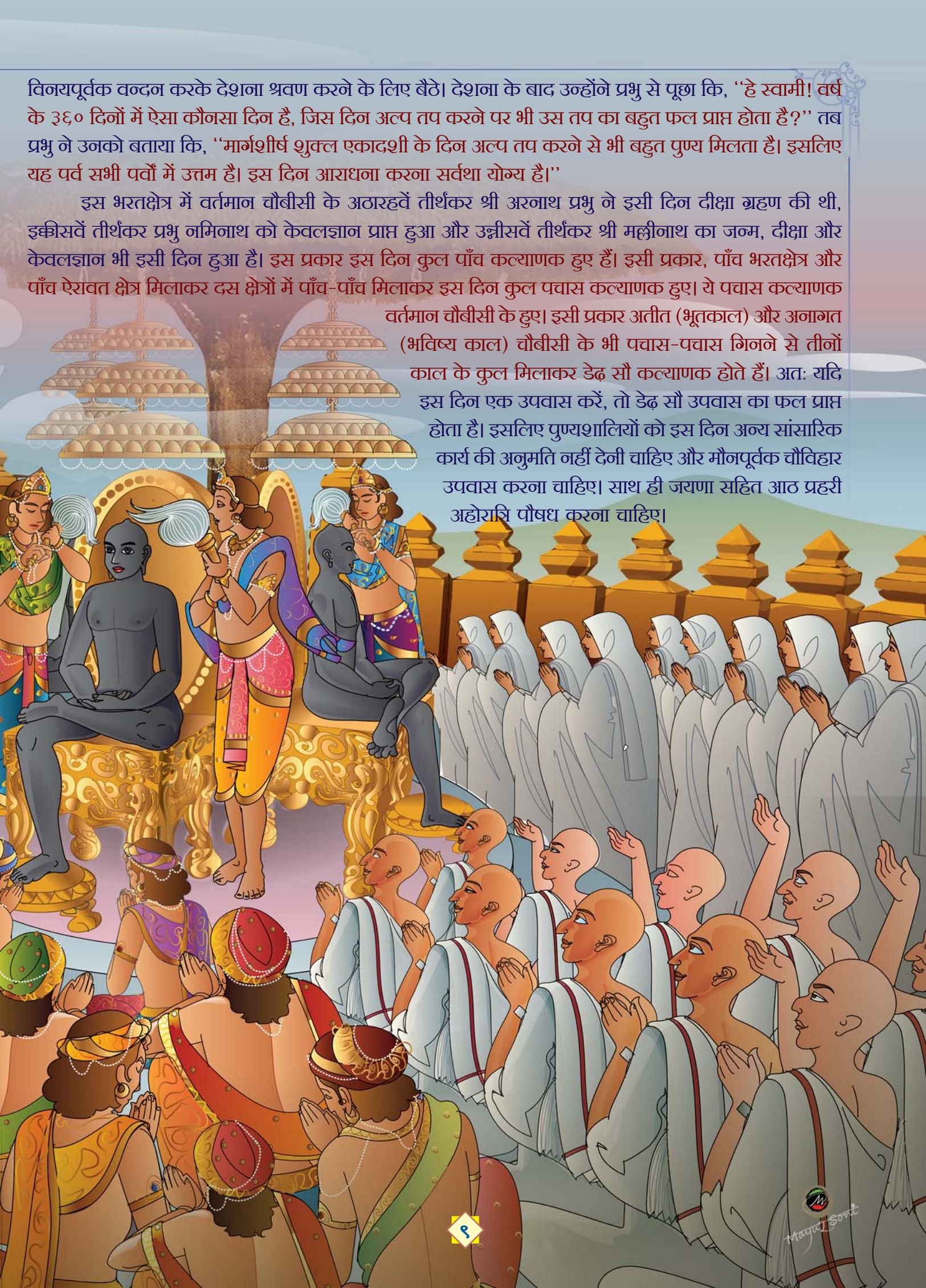

यदि इसमें गुरु या साधर्मी के साथ धर्मविचार, धर्मकथा या धर्मचर्चा धीमी आवाज में की हो, या शास्त्र का अभ्यास किया हो, नवकार की माला गिनी हो या सज्झाय किया हो तो मौनव्रत खण्डित नहीं होता है। किन्तु सावद्य वचन बोलने और विकथा करने से मौनव्रत का भंग होता है। पारणे के दिन पौषध पारकर ज्ञानपूजा करके जिनालय में जाकर उत्तम फल पूजा करनी चाहिए। फिर साधु भगवन्त को वोहराकर और साधर्मिक को भोजन कराते हुए उनकी उत्तम भक्ति करके पारणा करना चाहिए। इस प्रकार यह तप ग्यारह वर्ष, ग्यारह मास तक करके, ग्यारहवे महीने के बाद पौषध पारकर जिनेश्वर प्रभु के समक्ष ग्यारह पकवान, फल, धान्य आदि अर्पण करना चाहिए। यदि सामर्थ्य न हो, तो जघन्य से ग्यारह श्रावकों को भोजन करा सकते हैं। सामर्थ्य हो तो संघ की पूजा और संघ वात्सल्य करना चाहिए। ''ग्यारह अंग लिखवाकर यथाशक्ति व्रत का उद्यापन करने से बड़ा लाभ प्राप्त होता है।''

इतना सुनने के बाद कृष्ण ने नेमिनाथ भगवान से पूछा कि, ''किस पुण्यशाली जीव ने एकादशीकी आराधना की और उसका उसने क्या फल प्राप्त किया?'' तब भगवान ने कृपा करके कहा, ''हे वासुदेव! सुनो:''

धातकीखण्ड के दक्षिण भरतार्द्ध में विजयपुर नामक एक नगर है। उसमें चौरासी बाजार और अनेक दानशालाएँ हैं। वह नगर प्रत्यक्ष देवलोक के समान है। वहाँ अनेक धनवान और सुखी- सम्पन्न लोग रहते हैं। वहाँ नरवर्मा नामक गुणवान, प्रजापालक, प्रजा को भय से मुक्त करने वाला और शत्रु के मद का नाश करने वाला पराक्रमी राजा था। उसकी अतिप्रिय पत्नी चन्द्रावती महारूपवान, शीलवान, गुणवान और चौसठ कलाओं में प्रवीण थी।

उस नगर में सूर नामक एक बड़ा व्यापारी रहता था। वह देव-गुरु का परम भक्त, ऋद्धिवान और बड़ी सम्पदा का स्वामी था। उसने एक बार गुरु से पूछा कि, 'किस धर्म से कर्मक्षय होते हैं? कृपया बताने की कृपा

कीजिये।' तब गुरुदेव ने उसे मौन एकादशी का व्रत करने के लिए कहा। सेठ ने सपरिवार वह तप ग्यारह वर्ष-ग्यारह मास तक करके उसका उद्यापन किया फिर स्वामीवात्सल्य और महोत्सव किया। उसके बाद आयुष्य पूर्ण करके वह सेठ तप के प्रभाव से ग्यारहवें आरण्य देवलोक में इक्कीस सागरोपम के आयुष्य वाले देव के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ देवलोक की सम्पदा और ऋद्धि को भोगकर, आयुष्य पूर्ण होने पर वहाँ से च्यवित होकर इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के सौरीपुरी नगरी के समुद्रदत्त सेठ की प्रीतिमति स्त्री की कोख से पुत्र के रूप में जन्म लिया। उस समय उसकी माता को इस व्रत का पालन करने की इच्छा हुई। अनुक्रम से सवा नौ महीने के गर्भ की स्थिति पूर्ण होने पर उसका पुत्र के रूप में जन्म हुआ। मध्यरात्रि वेला में बालक की नाल काटकर उस नाल को जमीन में गाड़ने के लिए खुदाई करते हुए उसमें से धन का भण्डार मिला। उस भण्डार को लेकर माता-पिता ने बड़ा जन्मोत्सव मनाया। बारहवें दिन समस्त कुटुम्ब-परिवार को चारों आहार खिलाकर माता को व्रत करने की इच्छा हुई। इसलिए इस बालक का नाम सुव्रत रखा गया।

बालक बड़े लाड़-प्यार और जतन के साथ बड़ा हुआ। जब वह आठ वर्ष की अवस्था को प्राप्त हुआ तब माता-पिता ने उसे शिक्षा प्राप्त करने के योग्य जानकर शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में पाठशाला में प्रवेश करवाकर बड़े उत्सवपूर्वक अध्ययन के लिए भेजा। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से वह समस्त कलाओं में प्रवीण हुआ। युवावस्था को प्राप्त होने पर उसके पिता ने बड़े व्यापारियों की ग्यारह कन्याओं से उसका विवाह करवाया। सुव्रत ने बहुत समय तक सभी सुन्दर रूपवती देवकन्या सदृश सुकन्याओं के साथ संसार से सम्बन्धित पंचेन्द्रिय विषयसुखों का उपभोग किया।

उचित समय पर समुद्रदत्त सेठ ने पुत्र को घर का दायित्त्व सौंपकर श्रावक धर्म पालन करते हुए अनशन किया और मरकर देवलोक सिधारे। सुव्रत सेठ ग्यारह कोटि का स्वामी होकर लोगों में सम्मानित हुए। एक बार उस नगर के उद्यान में शीलसुन्दर नामक आचार्य का अनेक साधुओं के साथ आगमन हुआ। वनपालक ने तुरन्त ही राजा को यह समाचार दिए तो राजा ने उसे प्रसन्नतावश बहुत द्रव्य देकर विदा किया और आडम्बर सहित अपने परिवार के साथ मुनिराज की वन्दना करने के लिए गया। सुव्रत सेठ भी गुरु की वन्दना करने के लिए पधारे।

चार ज्ञान के स्वामी मुनीश्वर पर्षदा को धर्मोपदेश से लाभित करने लगे। उन्होंने मार्गशीर्ष सुदी एकादशी की महत्ता पर व्याख्यान दिया। उस उपदेश को सुनकर सुव्रत सेठ को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उन्होंने पूर्वभव को देखा और गुरु से कहा, ''भगवन! मैं अब क्या करूँ कि जिससे मेरा मोक्ष हो।'' तब गुरुदेव ने मौन एकादशी का तप करने के लिए कहा। सेठ ने सपरिवार मौनपूर्वक अहोरात चौविहार पौषध करते हुए तप करना प्रारम्भ किया।

एक बार चोरों ने सुना कि सुव्रत सेठ सपरिवार मौन एकादशी के दिन मौन सहित पौषध करते हैं। इसलिए उन्होंने सेठ के घर डाका डालने का निश्चय किया। चोरी के कुविचार का अमल करने के लिए उन्होंने रात्रि में सेठ के घर में प्रवेश किया। रात्रि के समय कुछ भी नहीं दिखाई देने के कारण चोरों ने अग्नि प्रकट करके उजाला किया और माल लूटने लगे। उस समय सेठ काउसग्ग ध्यान में खड़े थे। वे विचार करने लगे कि, चोर भले ही मेरा धन चुरा ले जाए पर अग्नि पैदा करने से अग्निकाय के जीव मर रहे हैं। उन जीवों की विराधना होने के कारण पश्चात्ताप करते हुए वे धर्मध्यान के श्रेष्ठ सोपान चढ़ने लगे। उधर चोर सारा धन लूटकर ले जानेवाले ही थे किन्तु सेठ के धर्म के प्रभाव से प्रसन्न शासन देवताओं ने उन चोरों को वहाँ रोककर स्तम्भित कर दिया।

प्रभात होते ही सेठ ने परिवार सहित उपाश्रय में गुरु के पास जाकर पौषध पारा, ज्ञान की पूजा की, व्याख्यान श्रवण किया और जिनालय में जाकर पूजा करके घर वापस लौटे तब चोरों को वहाँ खड़ा पाया। अड़ोसी-पड़ोसियों ने राजा को सारी बात बताई।

राजा ने सुभटों को चोरों को पकड़ने के लिए भेजा। सेठ को चिन्ता हुई कि, राजा के सिपाही चोरों की पिटाई करेंगे और उनको दुःख पहुँचाएंगे। अतः चोरों के प्रति सेठ के मन में करुणा भाव उत्पन्न होने से राजा के सुभट भी सेठ के तप के प्रभाव से चोरों की ही भांति स्थिर हो गए। राजा ने यह घटनाक्रम सुना तो वह भी अपने परिवार सहित वहाँ आये। सुव्रत सेठ ने राजा का बहुमान करके उपहार दिया और राजा के चरणों में झुककर चोरों के लिए अभयदान मांगा। राजा ने भी प्रसन्न होकर चोरों को क्षमा किया। सेठ ने भी चोरों को जाने की आज्ञा दी और सच्ची सलाह दी। शासन देवता ने भी सेठ की इच्छा को जानकर स्तम्भित हुए सुभटों और चोरों को मुक्त किया। सेठ के तप के प्रभाव के कारण अन्य लोग भी जैन धर्म का पालन करने लगे। राजा भी अतिप्रसन्न हुए और जैन धर्म की महिमा में भी वृद्धि हुई।

फिर एक बार मौन एकादशी के दिन सेठ अपने घर में पौषध लेकर काउसग्ग कर रहे थे। उसी समय नगर में कहीं आग लगी। लोगों में कोलाहल होने लगा। अग्नि पूरे नगर में फैल गई। लोगों ने सेठ को बाहर आ जाने के लिए बहुत कहा लेकिन सेठ तो परिवार सहित काउसग्ग में होने के कारण हिले-डुले भी नहीं और डरे भी नहीं और काउसग्ग करते रहे। सेठ के धर्म के प्रभाव से उनका घर, दुकान, गोदाम, सेठ की उपभोग्य वस्तुएँ, जिनभवन और पौषधशाला के अतिरिक्त सारा नगर जलकर नष्ट हो गया।

सुबह होते ही लोगों ने देखा कि सुव्रत सेठ की सारी सामग्री आग के दुष्प्रभाव से बच गई है। यह देखकर वे सेठ का धन्यवाद देने लगे। राजा भी अपने परिवार के साथ सेठ का घर देखने के लिए आए तो उन्हें भी आश्चर्य का सुखद अनुभव हुआ। अपने घर पधारे राजा को सेठ ने उपहार दिया और मोतियों के थाल से वर्धापन कीया। राजा ने सेठ से कहा कि, ''तुम इस नगर के रत्न हो। सारे नगरवासी श्री जैन धर्म की प्रशंसा करने लगे और जैन धर्म की महिमा का अनुभव कीया।''

तप पूरा होने पर सेठ ने तप का उद्यापन कीया। सारी सामग्री ग्यारह-ग्यारह की संख्या में रखकर

स्वामीवात्सल्य, संघपूजा इत्यादि अनेक धर्मकार्य किए। सेठ की सभी ग्यारह पत्नियों ने ग्यारह पुत्र और ग्यारह पुत्रियों को जन्म दिया। उचित समय पर सेठ ने सबका विवाह संस्कार कराया। समय बीतते-बीतते सेठ ऋद्धिवान हुए। निन्यानवे करोड़ स्वर्ण मुद्राओं का उपार्जन करके वे दान-पुण्य करने लगे। वृद्धावस्था को प्राप्त करने पर सेठ ने विचार किया कि, यदि सद्गुरु मिल जाए तो दीक्षा ग्रहण करके शुद्ध चारित्र का पालन करूँ तो मेरा जीवन सफल हो जाए। इसके लिए सुव्रत सेठ ने परिवार से आज्ञा प्राप्त की। सेठ के पुण्ययोग से चार ज्ञान के स्वामी श्री गुणसुन्दर नामक आचार्य वहाँ पधारे।

राजा और प्रजा सब गुरु की वन्दना करने के लिए गए। गुरुदेव ने धर्मोपदेश देते हुए कहा कि, यह संसार अनित्य है। दुर्लभ मनुष्यभव प्राप्त करके विषय सुख के लालच से प्रमाद का सेवन करनेवाला जीव हार जाता है तथा लम्बे समय तक संसार में भटकता रहता है। जीव तो अकेला ही आया है और अकेला ही जाएगा। सभी स्वार्थ के सगे हैं। स्वार्थ पूरा होते ही एक ही क्षण में स्नेह दिखाकर कहाँ और कब अलग हो जाएँगे इसका पता भी नहीं चलेगा। संसार का सुख तो चंचल है, जो प्राणी समस्त वस्तुओं से मूर्च्छामुक्त होकर श्री वीतराग देव द्वारा प्ररूपित (दिखाए हुए) दान, शील, तप और भावरूप चार प्रकार का धर्म करेगा वह प्राणी सारे दुःखों से मुक्त होकर परम्परा से जन्म, जरा, मरण से रहित मोक्ष सुख को प्राप्त होगा।

आचार्यश्री जी का उपदेश सुनकर सुव्रत सेठ संसार से भयभीत होकर गुरु से कहने लगे कि, मैं आपके वरद् हस्त से दीक्षा ग्रहण करूँगा। घर पहुँचकर सेठ ने अपने बड़े बेटे को घर का दायित्त्व सौंपकर, सात क्षेत्रों में विपुल धनराशि का दान के रूप में उपयोग करके, शुभ मुहूर्त में एक हजार लोग वहन कर सके ऐसी सहस्त्र वाहिनी नामक पालकी में बैठकर अपनी ग्यारह पत्नियों के साथ संवेगभाव से गुरुदेव के पास जाकर पाँच महाव्रतों को उच्चरित किया। वे दो सौ छट्ठ, एक सौ अट्ठम, दशम, दुवालस, पक्षक्षमण, मासक्षमण इत्यादि, चार बार चौमासी, एक बार छःमासी तक के अनेक तीव्र तप करते हुए आत्मा को प्रतिभावित करते हुए विचरण करने लगे।

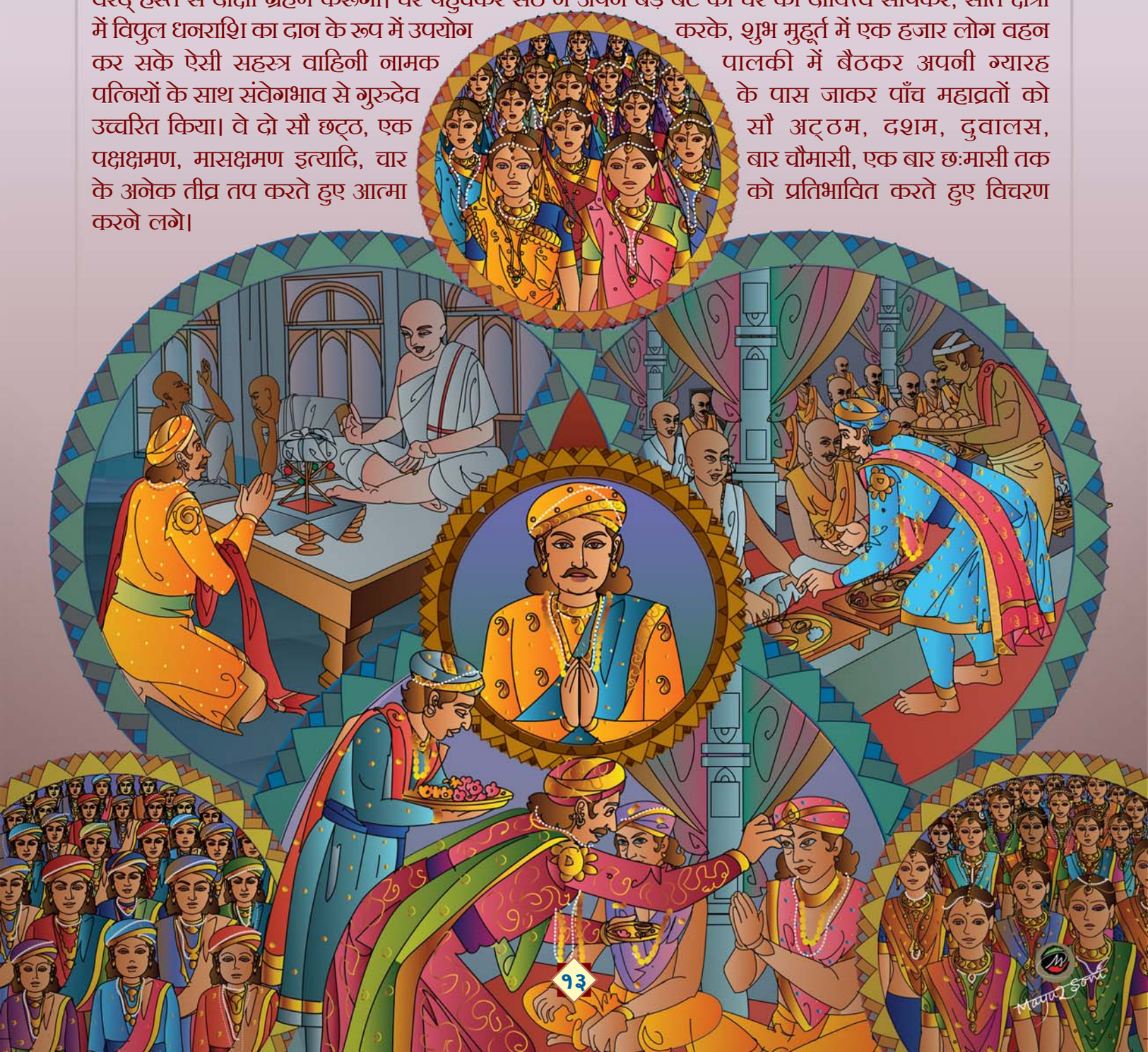

एक बार सुव्रत साधु मौन एकादशी के दिन मौनव्रत धारण करके काउसग्ग ध्यान में थे तब एक मिथ्यादृष्टि व्यन्तर देवता ने उनके तप से क्षोभ अनुभव किया। इसलिए साधु सुव्रत की परीक्षा करने के लिए उस देवता ने किसी अन्य साधु के शरीर को असह्य वेदना से ग्रस्त किया और उस साधु के शरीर में प्रविष्ट हुआ। अब देवता के बल से वह साधु सुव्रत मुनि, जो काउसग्ग में थे, वहाँ जाकर उनसे कहने लगे कि, आप उपाश्रय के बाहर जाकर किसी श्रावक के घर से औषधि लेकर आओ तो मेरी वेदना का शमन हो जाए। मेरे शरीर में रोग है। आप निरोगी हैं इसलिए मैं नहीं जा सकूँगा अतः आप जाओ। सुव्रत साधु ने विचार किया कि, मेरा तो मौनव्रत है तो मैं किसी श्रावक के घर जाकर कैसे बोल पाऊँगा? और फिर उपाश्रय से बाहर नहीं जाने का भी मेरा नियम है। उस साधु ने क्रोध में आकर सुव्रत मुनि के माथे पर ओघा मारा। सुव्रत मुनि ने सोचा कि, साधु को पीड़ा हो रही है फिर भी मैं कुछ कर नहीं पा रहा हूँ। इस प्रकार शुक्ल ध्यान को ध्याते हुए उन्होंने घाती कर्मों का क्षय किया और केवलज्ञान प्राप्त किया।

यह देखकर देवों ने बड़ा महोत्सव किया। सुव्रत मुनि ने अनेक भव्य जीवों को बोध प्राप्त कराया और केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनि ने अन्त समय में अनशन करके मोक्षपद प्राप्त किया। अन्य अनेक साधु भी तप की आराधना करके इसी भव में ही आन्तरिक ऋद्धि पाकर मोक्षसुख प्राप्त करेंगे।''

नेमीश्वर प्रभु के श्रीमुख से श्रीकृष्ण वासुदेव ने यह सारी बात सुनी और धर्म के प्रति उद्यमवन्त हुए और तीर्थंकर नामकर्म (गोत्रकर्म) का उपार्जन किया।

यह सारा प्रसंग श्री महावीरस्वामी ने श्री गौतम स्वामीजी को सुनाया।

इस प्रकार हमें अपने जीवन में भी मौन एकादशी पर्व की आराधना अत्यन्त उल्लासपूर्वक करनी चाहिए।

कार्तिक पूर्णिमा पर्व

जो पुण्यात्माएँ कार्तिक पूर्णिमा के दिन अरिहन्त परमात्मा का ध्यान करती हैं, वे पुण्यात्माएँ स्वर्ग इत्यादि के सुख भोगकर अन्ततः मोक्ष सुख को प्राप्त करती हैं। गिरिराज श्री सिद्धाचल की कार्तिक पूर्णिमा की यात्रा का विशेष महत्त्व है।

स्त्रीहत्या, बालहत्या, गौहत्या और ब्रह्म (ब्राह्मण) हत्या इत्यादि पाप करने वाला भी श्री विमलाचल महातीर्थ में एक उपवास करके गिरिराज की यात्रा करे, तो वह अनन्त पुण्य को प्राप्त करके सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इस गिरिराज के १०८ नाम हैं। हमारे पूर्वजों द्वारा तथा शास्त्रों में इस गिरिराज का महत्त्व समझाया गया है।

कार्तिक पूर्णिमा, गुजराती संवत् का पहला महीना और पहली पूर्णिमा होती है। लाखों जैन अनेक तीर्थों में पूर्णिमा के अवसर पर दर्शन-पूजन करने हेतु जाते हैं। पूर्णिमा के दिन पालिताणा, शंखेश्वर, समेतशिखर, कलिकुण्ड तथा पावापुरी आदि अनेक तीर्थस्थानों पर असंख्य भाविक लोग जाते हैं। तो आइए, कार्तिक पूर्णिमा की महत्त्वपूर्ण कथा सुनते हैं।

श्री द्राविड़ और वारिखिल, दस करोड़ मुनियों के साथ गिरिराज तीर्थ पर कार्तिक पूर्णिमा के दिन मोक्ष सिधारे थे। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक जीवों ने इस गिरिराज पर से मोक्षगमन किया है। इनकी कथा और प्रसंग इस प्रकार है।

श्री आदिनाथ भगवान के सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। उनमें से एक पुत्र का नाम द्रविड़ था, उसके द्राविड़ और वारिखिल नामक दो पुत्र थे। द्रविड़ ने अपने पिता श्री ऋषभदेव भगवान से दीक्षा लेने का निर्णय किया। अतः उसे अपने पुत्र द्राविड़ को मिथिला का राज्य, और वारिखिल को एक लाख गाँव दिये। स्वयं ने दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया।

अब हुआ ऐसा कि, द्राविड़ को वारिखिल की सम्पदा ज्यादा लगने पर उससे ईर्ष्या होने लगी। भाई की सम्पदा असह्य होने के कारण द्राविड़ को वारिखिल के प्रति द्वेषभाव जगा। जब यह बात वारिखिल को पता चली, तो उसे भी द्राविड़ के प्रति द्वेषभाव जगा, और फलतः दोनों एक दूसरे के दोष देखने लगे।

''ईर्ष्या का दोष इतना भयंकर होता है कि, वह प्रमोद भावना तथा एक-दूसरे के गुणों को देखने के गुण को भी जला देता है।'' प्रमोद भावना नहीं रहने से भाई-भाई भी परस्पर दोष देखने लगते हैं। इस कारण से

दोनों भाई भी राज्यसुख के स्वामी होते हुए भी, सुख की सामग्री में भी दुःखी रहने लगे। यह दोष यदि साधु के जीवन में आ जाए, तो वह साधु होते हुए भी बहुत दुःखी हो जाता है। इसलिए कभी भी किसी की ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, और प्रमोद भावना को अपने जीवन में स्थान देना चाहिए। यदि किसी में कोई दोष हो भी, तो उसे पहचानकर उसकी तिलांजलि दे देनी चाहिए।

एक बार द्राविड़ ने वारिखिल को अपने नगर में आने से निषेध किया, तो वारिखिल अपनी बड़ी सेना लेकर द्राविड़ से युद्ध करने के लिए आ पहुँचा। द्राविड़ भी अपने अनुज से युद्ध करने के लिए तैयार हुआ। दोनों सेनाओं ने २० कोस का अन्तर रखकर अपना-अपना पड़ाव डाला। दोनों की सेनाओं में दस-दस लाख हाथी, घोड़े, रथ

तथा दस-दस करोड़ पैदल सैनिक थे। इन दोनों के बीच सात महीने तक युद्ध चला। इस युद्ध में बारह करोड़ सैनिकों की मृत्यु हुई। कहावत है कि, ''सत्ताधीशों की लड़ाई में मरना प्रजा को पड़ता है।''

चातुर्मास का समय आया, युद्ध बन्द घोषित हुआ। उस समय चाहे कितना ही लम्बा युद्ध चले, परन्तु चातुर्मास के समय में कभी भी युद्ध नहीं होता था, अतः युद्धविराम हुआ। इससे हमारे अन्दर यह समझ आनी चाहिए कि चातुर्मास में हिंसा कम करनी चाहिए। वर्षाकाल में तो वृक्ष फल-फूलकर बड़े होते हैं, और चारों ओर हरियाली छा जाती है।

उसी दौरान एक बार द्राविड़ खिली हुई हरियाली को देखने के लिए निकला। वहाँ एक वन में वह किसी तापस के आश्रम में गया। उस आश्रम में बहुत सारे तापस थे। तापस जटा रखते हैं और वल्कल वस्त्र धारण करते हैं। उन तापसों के गुरु का नाम सुवल्गु था। वे मिथ्यात्व अवस्था में होते हुए भी शान्त गुणों वाले थे। विमल मन्त्री की प्रेरणा से द्राविड़ राजा उस तापसपति के पास गया, और उनको नमस्कार किया। तापसपति ने अपना ध्यान पूर्ण करके राजा को आशीर्वाद प्रदान किए और उनका अभिवादन किया। बाद में राजा को धर्मशिक्षा का श्रवण कराया।

''हे राजन्! यह संसार सागर महाभयंकर है। उसमें जन्म, जरा और मरण के दुःख विपुल मात्रा में हैं। काम, क्रोध, लोभ आदि विषयों में संसारी प्राणी डूबे हुए हैं, उनमें से वे बाहर निकल ही नहीं पाते। अर्थात् उनमें से बाहर निकल पाना बहुत कठिन है। युद्ध में विजय एक की होती है, किन्तु विनाश अनेक महत्त्वपूर्ण मनुष्यों का होना निश्चित है। इसलिए राज्य से आरम्भ, समारम्भ और दुर्ध्यान होता है, जो नरक का कारण है। राज्य, पृथ्वी के एक टुकड़े के लोभ के लिए भाई इत्यादि स्वजनों का भी विनाश करता है। आप दोनों श्री आदिनाथ भगवान के पोते होकर युद्ध करो, यह उचित नहीं है।''

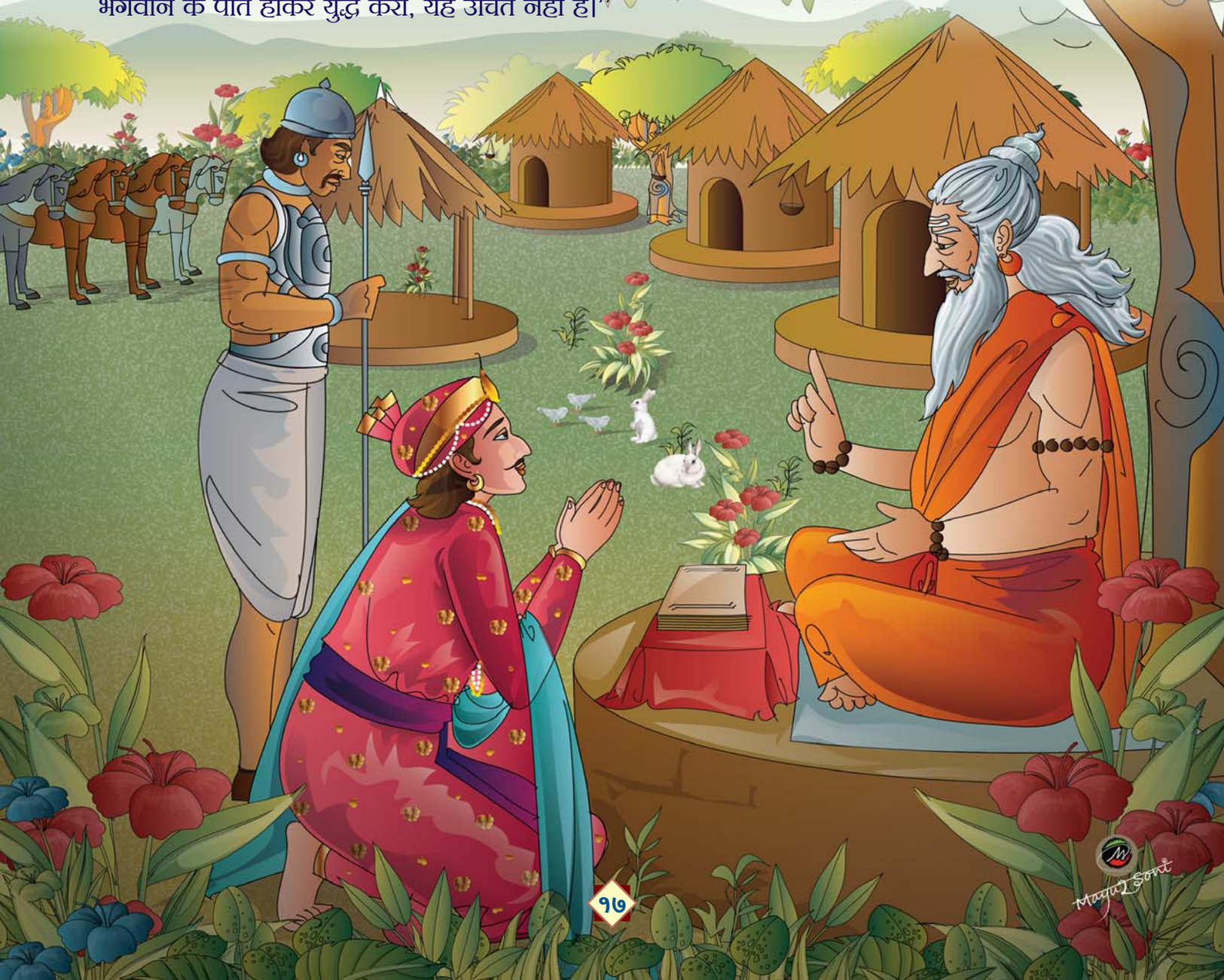

तापस के दर्द भरे और मार्मिक वचन सुनकर द्राविड़ ने कहा, ''पूर्वकाल में भरत और बाहुबली ने भी युद्ध किया है, तो हम युद्ध करें, तो इसमें क्या दोष है?'' द्राविड़ के इस प्रश्न का समाधान करते हुए तापस ने समझाया, ''उनके पूर्व भव में भरत ने साधुओं को दान दिया, इसलिए उसने चक्रवर्ती का पुण्य उपार्जित किया था, और बाहुबली ने साधुओं की वैयावच्च की, इसलिए उसने महापराक्रम का पुण्य उपार्जित किया था। और वे दोनों देवों के समझाने से मान-अहंकार आदि को छोड़कर युद्ध से पीछे हट गए और उनका उद्धार हो गया।''

तापस की बात से द्राविड़ को लज्जा हुई, और अपनी भूल स्वीकार करते हुए तापस का उपकार मानते हुए वह बोला, ''आपने मुझे नरक में जाने से बचा लिया।'' फिर वह अपने छोटे भाई से क्षमायाचना हेतु गया। छोटे भाई ने भी बड़े भैया को शस्त्ररहित और पैदल आते हुए देखकर सामने जाकर खमाया और आलिंगन किया। दोनों ने परस्पर एक-दूसरे के राज्यों को सम्भालने के लिए कहा, मगर दोनों ने ही इस प्रस्ताव का अस्वीकार किया। फिर उन्होंने दीक्षा लेने का संकल्प करके अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर दस करोड़ पुरुषों के साथ उसी तापस से तापसव्रत अंगीकार कर लिया।

गंगा के जल से स्नान करके, कन्दमूल इत्यादि का भक्षण करके अल्प कषायी और अल्पनिद्रा

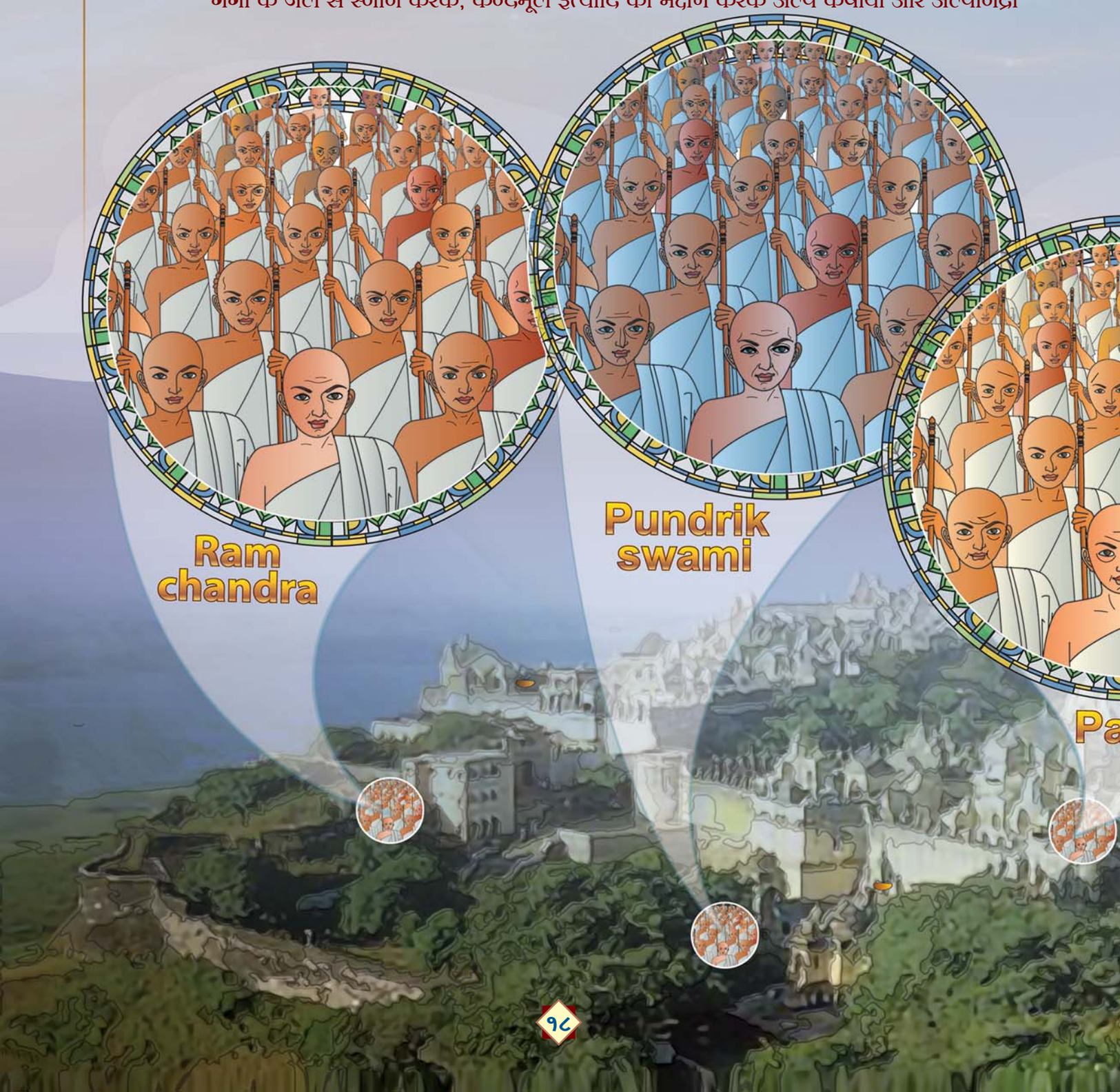

वाले द्राविड़ आदि तापस जपमाला से श्री आदिनाथ भगवान का स्मरण करते थे। ऐसा करते हुए लाखों वर्ष बीते। ये तापस तत्त्वज्ञान के अभाववाले होने के कारण मोहगर्भित और अज्ञानगर्भित वैराग्यवाले थे।

एक बार नमि और विनमि नामक मुनिवरों के दो विद्याधर शिष्य वहाँ आकाशमार्ग से पधारे। द्राविड़ और वारिखिल आदि तापसों ने वन्दना करके पूछा कि, ''आप कहाँ पधार रहे हैं?'' तब उन्होंने कहा कि, ''हम श्री पुण्डरीकगिरि पर यात्रा करने के लिए जा रहे हैं,'' और साथ ही वे उसकी महिमा बताते हैं कि, ''इस तीर्थ के प्रभाव से अनन्त पुण्यात्माएँ वहाँ से मोक्ष सिधारे हैं, और भविष्य में शुद्ध चारित्रवाले भी मोक्ष जाएँगे। उसकी महिमा का कोई पार नहीं है।''

१) इस तीर्थराज से दो करोड़ मुनियों के साथ नमि-विनमि विद्याधर मुनिवर, फाल्गुन सुदी दसमी के दिन मोक्ष जाएँगे। २) पुण्डरीकस्वामी भी पाँच करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष गमन करेंगे। ३) श्री रामचन्द्रजी तीन करोड़ मुनिवरों के साथ, ४) श्री नारद मुनिवर इक्यानवे लाख मुनिवरों के साथ, ५) शाम्ब और प्रद्युम्न मुनिवर साढ़े आठ करोड़ मुनिवरों के साथ, ६) पाण्डव बीस करोड़ मुनिवरों के साथ, ७) श्री थावच्चा पुत्र और ८) शुक मुनिवर एक हजार मुनिवरों के साथ,

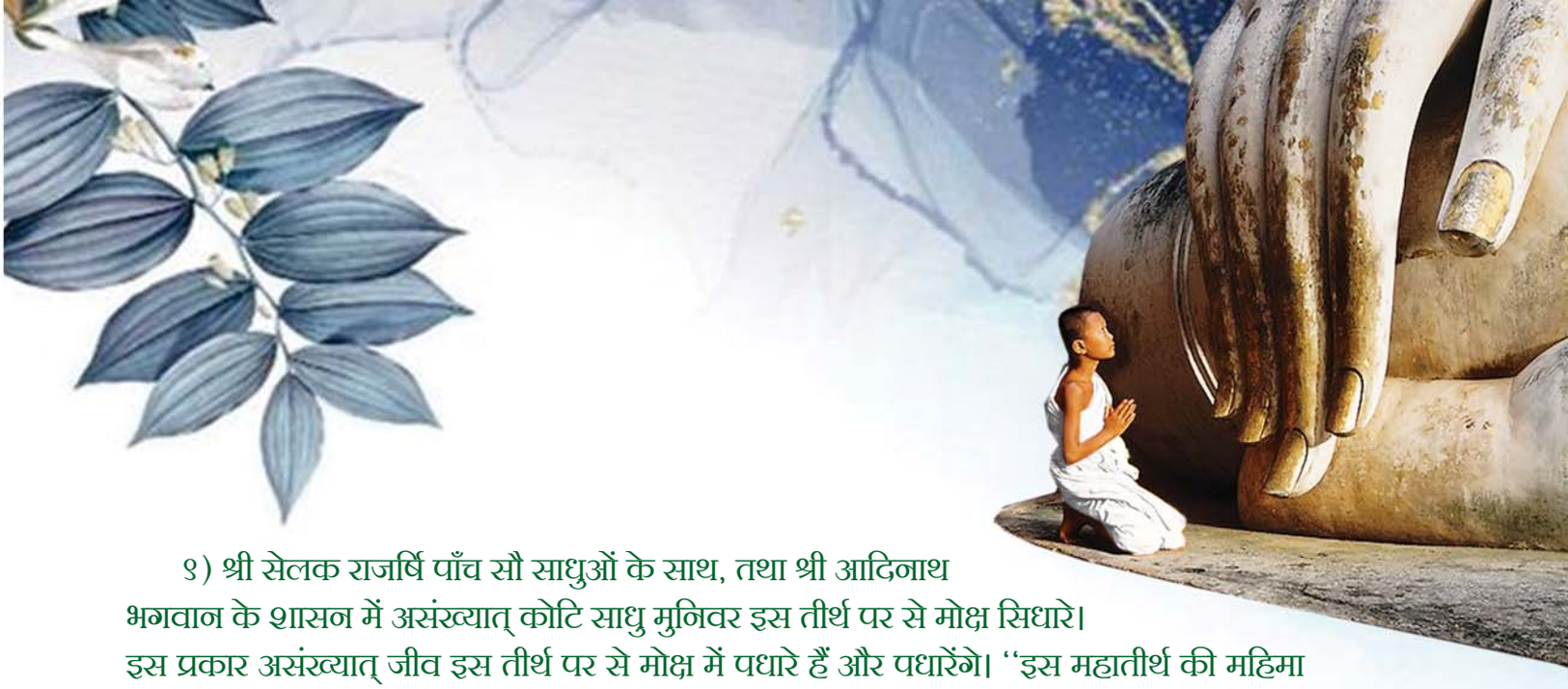

९) श्री सेलक राजर्षि पाँच सौ साधुओं के साथ, तथा श्री आदिनाथ भगवान के शासन में असंख्यात् कोटि साधु मुनिवर इस तीर्थ पर से मोक्ष सिधारे। इस प्रकार असंख्यात् जीव इस तीर्थ पर से मोक्ष में पधारे हैं और पधारेंगे। ''इस महातीर्थ की महिमा का गायन करने में केवलज्ञानी भी समर्थ नहीं हैं।''

तीर्थाधिराज की ऐसी महिमा सुनकर सभी तापस इन दोनों मुनियों के साथ उत्साहित होकर तीर्थयात्रा करने के लिए पादविहार करके गए। विधिपूर्वक यात्रा करने के लिए छ'री का पालन करना आवश्यक होता है, तभी यात्रा का फल मिलता है। ये छः नियम इस प्रकार हैं:

(१) सम्यकत्वधारी: श्री वीतराग परमात्मा, सुसाधु और श्री केवली भगवन्त द्वारा कहे गए तत्त्वों के प्रति निर्दोष श्रद्धा रखना।

(२) पादचारी: गुरु का सुयोग हो, तो जूते आदि का त्याग करके गुरु के साथ पैदल चलकर यात्रा करना।

(३) सचित्तपरिहारी: सचित्त वस्तु का त्याग करना।

(४) एकासनकारी: यथासम्भव कम से कम एकासने का तप करना।

(५) ब्रह्मचर्य: ब्रह्मचर्य का पालन करना, विषय-कषायों का त्याग करना।

(६) भूमिशयनकारी: भूमि पर शयन करना।

यात्रा तभी सच्ची कही जाती है, जब उसमें आत्मकल्याण का भाव हो, और उसके लिए सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति हो, ऐसी भावना होनी चाहिए। विद्याधर मुनियों से सुनी हुई देशना से तीर्थराज की यात्रा के लिए जा रहे तापसों ने मिथ्यात्व का त्याग करते हुए लोच करके साधुधर्म का स्वीकार किया। इस प्रकार सदुपदेश श्रवण का सच्चा फल यही है।

श्री विमलाचल पर्वत को देखकर सभी मुनिवरों को बहुत हर्ष हुआ। भरत महाराजा द्वारा निर्मित जिनालयों में युगादिदेव और अन्य जिनेश्वरों को नमस्कार किया। दोनों विद्याधरों ने मुनिवरों से कहा कि, अनन्तभव में बाँधे हुए पापकर्म इस तीर्थराज की सेवा से दूर हो जाएँगे। अतः उज्ज्वल होकर संयम और तप की आराधना में जुड़े रहें। ऐसा कहकर दोनों विद्याधरों ने वहाँ से विहार कर लिया।

श्री भरतमहाराजा के निर्वाण के पूर्व कोटि वर्ष बाद श्री द्राविड़-वारिखिल आदि दस कोटि मुनिवर तप करके केवलज्ञान प्राप्त करके कार्तिक पूर्णिमा के दिन परम पद को प्राप्त हुए। वहाँ उनके निर्वाण स्थानों पर उनके पुत्रों ने प्रासादों का निर्माण कराया। कार्तिक पूर्णिमा और चैत्री पूर्णिमा को जो भी भव्यात्मा श्रीसंघ के साथ यात्रा करे, और दान-तप करे वह शिवसुख की प्राप्ति करता है। इसलिए यदि शक्ति हो तो संघ के साथ यात्रा करनी और करानी चाहिए, जिससे अनेक पुण्यात्माओं को आत्मकल्याण प्राप्त हो।

संक्षेप में, यात्रा करने का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति का है, और मोक्ष प्राप्ति का साधन सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र है। यदि यह ध्येय नहीं हो, तो वह यात्रा सही अर्थ में सच्ची यात्रा नहीं कही जाएगी। अतः प्रत्येक यात्री को मोक्ष और मोक्ष प्राप्ति का उद्देश्य केन्द्र में रखकर यात्रा करनी चाहिए।

पोषदशमी पर्व

चम्पानगरी में पूर्णभद्र नामक एक चैत्य था। वहाँ एक दिन चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी भगवान का पावन आगमन हुआ। उनके आगमन के समाचार वनपालक ने श्रेणिक महाराजा को दिये। राजा ने प्रसन्न होकर प्रभु के आगमन की बधाई देने वाले सेवक को मुकुट के अतिरिक्त अपने अंग पर रहे सारे आभूषण दे दिये। तत्पश्चात् श्रेणिक महाराजा ने अपने परिवार के साथ महाआडम्बरपूर्वक प्रभु के पास आकर वन्दन किया और प्रभु के सम्मुख बैठे।

संसार सागर को पार कर चुके श्री महावीर प्रभु ने चार गतियों में पड़े और भटक रहे जीवों के उद्धार के लिए उपदेश दान करते हुए कहा, ''भले ही इस संसार में कोई जीव चक्रवर्ती की पदवी भोग रहा हो किन्तु यदि वह जिनधर्म से विमुख है तो उसका मोक्ष नहीं होता। और यदि कोई जीव अत्यन्त दरिद्र हो लेकिन जिनधर्म का रागी-अनुरागी हो तो वह मोक्ष पद को अवश्य प्राप्त करता है। इसलिए इस संसार में जीव को जिनधर्म की सामग्री प्राप्त होना महादुर्लभ है। उसमें भी दान, शील, तप और भाव-धर्म के ये चार अंग प्राप्त करना तो बहुत कठिन है।'' यदि जीव पाप करे तो नरक में जाता है, उसमें भी देवद्रव्य की चोरी तथा परस्त्रीगमन करने वाले तो सात बार सातवीं नरक में जाता है। देवद्रव्य अर्थात् भगवान को अर्पण किया हुआ, अर्थात् जिनालय में भगवान को अर्पण किया हुआ फल, अनाज, धन इत्यादि। यदि जैन श्रावक-श्राविका इसका भोग करे तो उसे देवद्रव्य के दुरुपयोग का दोष लगता है। ऐसा जीव बहुत दुःख भोगता है और अनेक भवों तक उसे संसार में भटकना पड़ता है।

उपरान्त प्रभु ने कहा कि, ''हे गौतम! भूतकाल में अनेक जीव पूर्वधर होते हुए भी निगोद में गए हैं।''

इस पर गौतमस्वामीजी ने पूछा कि, ''पूर्वधर होकर भी निगोद में कैसे जा सकता है?'' तब प्रभु ने कहा कि, ''प्रमाद के कारण, अर्थात् शुभ प्रवृत्ति या स्वाध्याय से एक क्षण भी रहित होने से जीव आलस्य में फंस जाता है। इसलिए प्रमाद बढ़ने के कारण शुभ में से अशुभ में जाने के कारण वह जीव निगोद में चला जाता है।'' गौतमस्वामी ने वीर प्रभु को तीन प्रदक्षिणाएँ देकर वन्दन करके पूछा कि, ''प्रभु! पोषदशमी का क्या महत्त्व है? यह समझाने की कृपा करें।''

प्रभु ने पोषदशमी का महत्त्व समझते हुए कहा कि, ''पोषदशमी के दिन श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्म हुआ था।'' इसलिए उसे 'पार्श्वजिन जन्मकल्याणक' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन जिनालय में जाकर अष्टप्रकारी या सत्रहभेदी पूजा करनी चाहिए और स्नात्र महोत्सव करना चाहिए। आडम्बरसहित प्रभु की नवांगी पूजा करके गुरु के पास जाकर व्याख्यान-धर्म का श्रवण करना चाहिए। उस दिन एकलठाणा, अर्थात् ठाम चौविहार एकासणे का पच्चक्खाण लेना चाहिए। एकासणा करके आहार के साथ उसी समय पानी भी आवश्यकतानुसार लेकर चौविहार का पच्चक्खाण ले लेना चाहिए। उसके बाद सारा दिन पानी और भोजन ग्रहण नहीं करना होता इसलिए इसे ठाम चौविहार कहा जाता है।

दूसरे दिन ठाम चौविहार पच्चक्खाण लेकर एकासणा करना चाहिए। तीसरे दिन भी तिविहार पच्चक्खाण लेकर एकासणा करना चाहिए। इस प्रकार पोष वदी नवमी, दसवीं और एकादशी - इन तीन तिथियों पर यह तप दस वर्ष, दस महीने तक करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो तीन दिन ब्रह्मचर्य का पालन भी करना चाहिए। इस प्रकार तप करने से जीव की मनःकामना सिद्ध होती है तथा इस लोक में जीव धन धान्य आदि प्राप्त करता है। परलोक में इन्द्रादि पद प्राप्त करके अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है।''

प्रभु ने इस प्रकार पोषदशमी की विधि बताई। उसके बाद गौतमस्वामी जी ने पूछा कि, "प्रभु यह तप किसने किया था? उसे इस तप का क्या फल प्राप्त हुआ?" प्रभु ने कहा, "हे गौतम! सुनो, तीर्थंकर वामानन्दन श्री पार्श्वनाथ भगवान के समय और मेरे शासन के बीच के समयान्तराल में सुरदत्त नामक श्रेष्ठी ने इस व्रत की आराधना की थी।

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में सुरेन्द्रपुर नामक एक नगर था। इस नगर में नरसिंह नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम गुणसुन्दरी था। गुणसुन्दरी शीलवान और पतिव्रत धर्म का निर्वाह करती थी। इस नगर में महाधनवान, तेजस्वी, यशस्वी और प्रतापी सुरदत्त नामक श्रेष्ठी रहता था। उसकी शीलवान पत्नी का नाम शीलवती था।

सुरदत्त श्रेष्ठी मिथ्यात्व से रंगा हुआ था। इसलिए वह संन्यासी भक्तों द्वारा अंगीकार किये हुए शैवधर्म का पालन करने में दिन-रात व्यस्त रहता था। इस कारण वह श्रेष्ठी जिनशासन, जिनप्रवचन, सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, कुदेव, कुधर्म या कर्म और अकर्म के बारे में कुछ भी नहीं जानता था। वह यह भी नहीं जानता था कि, जीव-अजीव या आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं या एक ही है। वह पूरा दिन मिथ्याधर्म का ही आचरण करता था।

एक बार सुरदत्त व्यापार करने हेतु सवा दो सौ जहाजों में किराने का सामान लादकर रत्नद्वीप की ओर गया। वहाँ जाकर उसने सारा किराना बेच दिया और वहाँ से अन्य नया किराना भरकर अपने नगर की ओर प्रस्थान किया। परन्तु कर्म के उदय के कारण दैवयोग से तेज पवन के कारण जहाज उल्टी दिशा में चलने लगे। इसलिए सुरदत्त अपने नगर के रास्ते से अलग रास्ते चलकर दूर कालकूट द्वीप पर पहुँच गया। वहाँ से आगे जाने के लिए रास्ता नहीं मिलने पर उसे उसी द्वीप पर ही रुकना पड़ा। रत्नद्वीप से जो किराना जहाजों में भरा हुआ था वह पाँच सौ गाड़ियों में भरकर, जहाज वहीं छोड़कर सुरदत्त पैदल मार्ग पर बढ़ने लगा। रात होने को आयी। अंधेरा छा गया था। रास्ते में चोरों की टोली ने किरानों से लदी हुई सारी गाड़ियों को लूट लिया और सुरदत्त का सारा धन-जेवर आदि भी लूट लिया। काफी समय भटकते-भटकते वह खाली हाथ अपने घर वापस लौटा।

सुरदत्त ने अपने घर के भण्डार में ग्यारह करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ कमाकर जमा कर रखी थीं, वह भण्डार भी खाली हो गया और सारी स्वर्ण मुद्राएँ अदृश्य हो गईं। पहले धनवान होने के कारण उसे नगर में श्रेष्ठी का पद मिला था, वह पद भी निर्धन होते ही चला गया। यह सब कर्म के उदय के कारण हुआ था। वह बहुत दुःख में आ गया और कल्पान्त करते हुए सोचने लगा कि, धन के चले जाने से मान-सम्मान भी चला गया, पता नहीं किसके कोप का भाजन होना पड़ रहा है? इस प्रकार विलाप करते हुए दिन बीतने लगे।

एक दिन उसके सुरेन्द्रपुरनगर के उपवन में जयघोष नामक बड़े आचार्य का आगमन हुआ। उनके आगमन के समाचार वनपालक ने नरसिंह राजा को दिए। राजा अपनी चतुरंगिणी सेना के परिवार के साथ गुरु वन्दन के लिए उपवन में गए। सुरदत्त भी राजा के साथ उपवन में गया। आचार्य महाराज ने

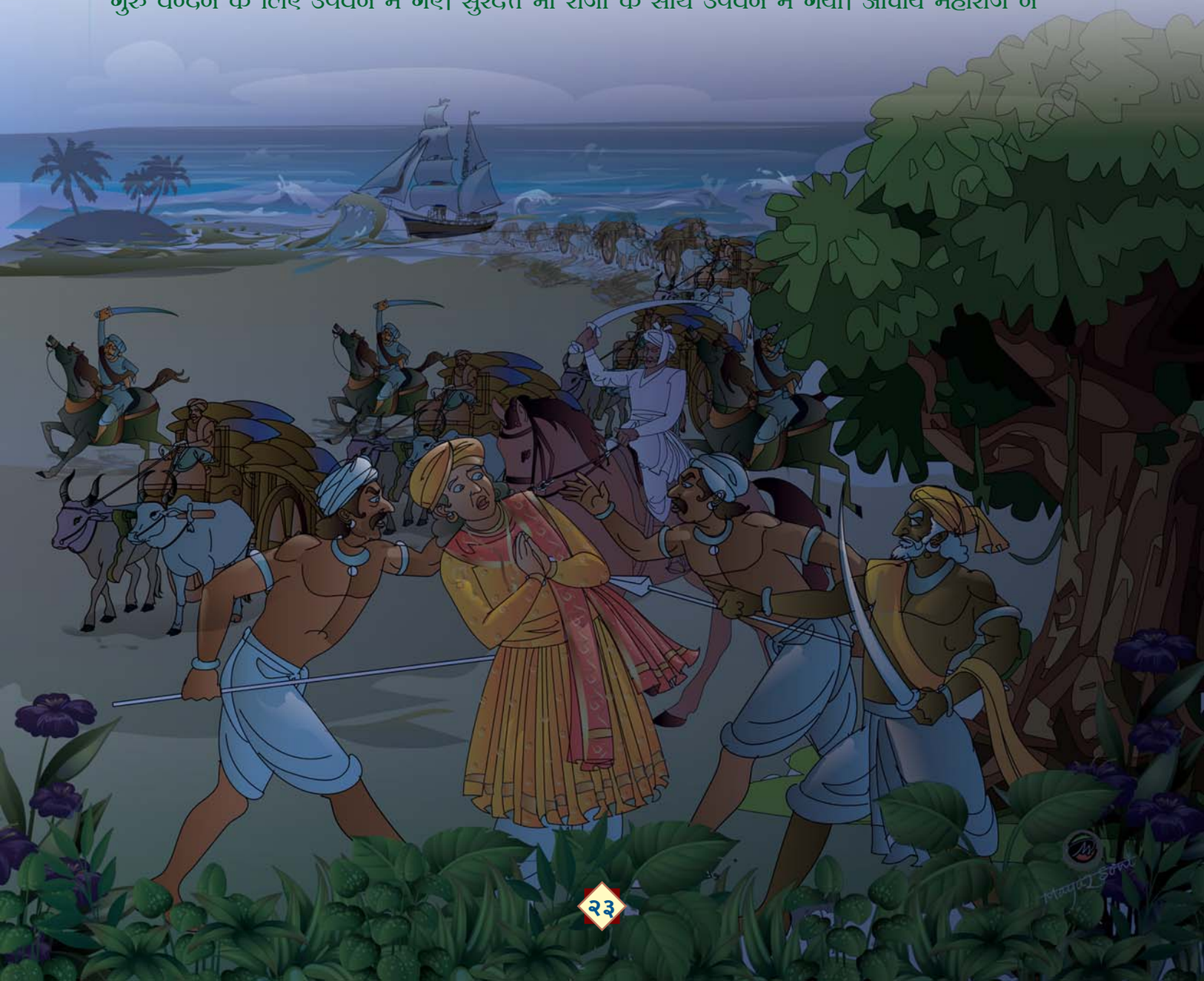

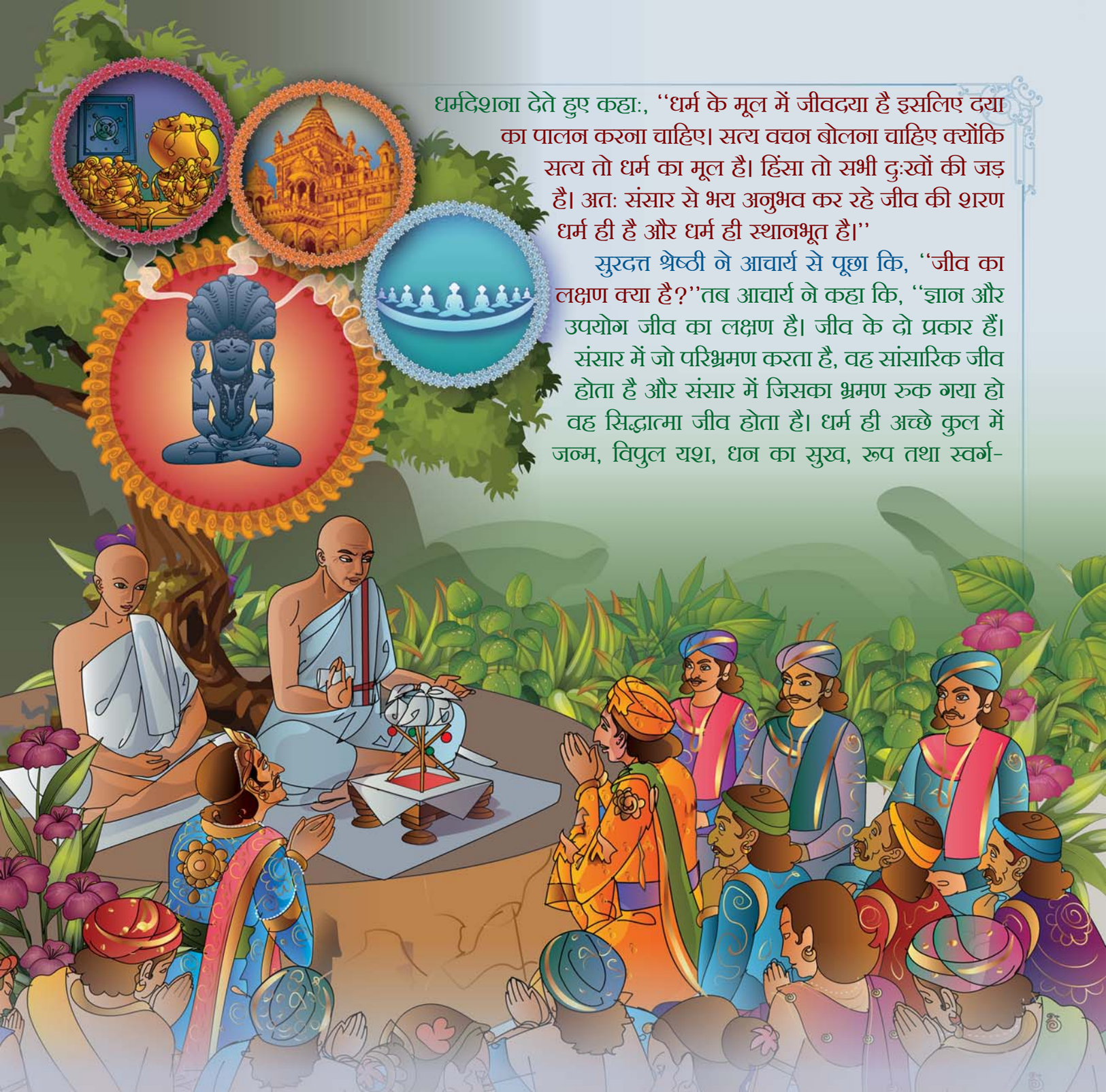

धर्मदेशना देते हुए कहा:, ''धर्म के मूल में जीवदया है इसलिए दया का पालन करना चाहिए। सत्य वचन बोलना चाहिए क्योंकि सत्य तो धर्म का मूल है। हिंसा तो सभी दु:खों की जड़ है। अत: संसार से भय अनुभव कर रहे जीव की शरण धर्म ही है और धर्म ही स्थानभूत है।''

सुरदत्त श्रेष्ठी ने आचार्य से पूछा कि, ''जीव का लक्षण क्या है?''तब आचार्य ने कहा कि, ''ज्ञान और उपयोग जीव का लक्षण है। जीव के दो प्रकार हैं। संसार में जो परिभ्रमण करता है, वह सांसारिक जीव होता है और संसार में जिसका भ्रमण रुक गया हो वह सिद्धात्मा जीव होता है। धर्म ही अच्छे कुल में जन्म, विपुल यश, धन का सुख, रूप तथा स्वर्ग-मोक्ष सुख का दायक है। इसलिए धर्म के मार्ग के साधन रहित जो मनुष्य है वह तिर्यंच के समान होता है।'' गुरुमुख से ऐसा उपदेश श्रवण करके सुरदत्त श्रेष्ठी ने धर्म को प्राप्त किया तथा उसे जीवाजीवादि नव पदार्थ युक्त सम्यक्त्व रत्न भी प्राप्त हुए। उन्होंने गुरुदेव से पूछा कि, ''मैं ऐसे कौन से धर्म का पालन करूँ की मेरे घर में संगृहित और बाहर से की हुई मेरी कमाई रूपी जो धन नाश हो गया है वह मुझे फिर से मिल जाए?'' तब गुरुदेव ने कहा कि, ''पोषदशमी के दिन श्री पार्श्वनाथ भगवान का जन्मकल्याणक महोत्सव है। अत: तुम उसी पोषदशमी का व्रत करो। इससे तुम्हारी सारी सम्पत्ति तुम्हें पुन: प्राप्त होगी।''

पोषनवमी के दिन शक्कर के उबले हुए पानी का सेवन करके ठाम चौविहार करके एकासणा करो। दसमी के दिन खीर के साथ ठाम चौविहार करके एकासणा करो तथा एकादशी के रोज संपूर्ण भोजनयुक्त एकासणा करके तिविहार का पच्चक्खाण करो। इन तीनों दिन 'श्री पार्श्वनाथाय अर्हते नम:' मन्त्र का २००० जाप करो। पारणे के दिन स्वामीवात्सल्य करो।'' सुरदत्त श्रेष्ठी ने गुरुदेव से व्रतग्रहण किया और गुरुदेव ने दूसरे दिन अन्यत्र विहार कर लिया।

सेठ ने दस वर्ष, दस महीने तक व्रत किया और जैसे ही व्रत पूर्ण हुआ कि व्रत की महिमा से सेठ के सवा दो सौ जहाज, जो कालकूट द्वीप पर रुक गए थे, वे अनुकूल पवन के बहने से अपने आप सेठ के नगर वापस लौट आए। जहाज के मल्लाहों ने सेठ को ये समाचार दिए। उधर घर के भण्डार में संचित धन जो चला गया था वह भी पुनः उत्पन्न हो गया। यह देखकर दोनों सेठ-सेठानी बहुत प्रसन्नता अनुभव करते हुए कहने लगे कि, ''यह सारा प्रताप पोषदशमी के व्रत का ही है। जैन शासन की महिमा अपरम्पार है।'' सेठ कहने लगे कि, ''मैंने अनेक धर्मों के व्रत किए हैं पर जैनशासन तो प्रकट-प्रभाव वाला है। संसार के सभी धर्मों में जैन धर्म जैसा अन्य कोई धर्म इहलोक और परलोक में सुखदायक नहीं है।''

पार्श्वनाथ प्रभु की कृपा, गुरु की आज्ञा और जैन धर्म के प्रभाव से ही मैं धनवान बना हुँ, ऐसा वे सबको कहने लगे और सबको जैन धर्म अंगीकार कर लेने के लिए समझाने लगे। निर्धनता के कारण गया हुआ श्रेष्ठी पद भी वापस मिल गया। इस प्रकार वे दिन व्यतीत कर रहे थे। ऐसे में एक दिन नगर के उपवन में आचार्य सुखेन्द्रसूरि जी पधारे। उनके आगमन के समाचार वनपालक ने राजा को सुनाए। राजा के साथ सुरदत्त श्रेष्ठी भी बड़े आडम्बरपूर्वक उपवन में गए और गुरुदेव की वन्दना करके यथास्थान विराजित हो गए। आचार्य ने देशना प्रदान की। गुरुमुख से देशना सुनकर श्रेष्ठी का मन संयम ग्रहण करने के लिए तत्पर हुआ। घर जाकर पुत्र को सारा दायित्त्व सौंपते हुए कहा, ''तुम पोषदशमी की आराधना करना। उद्यापन में दस वेष्टन, दस रूमाल (पुस्तक बाँधने के लिए), दस नवकारवाली, दस नीलमणि, दस चन्दोबा, सोना, रूपा, कांसा और पीतल - इन चार धातुओं की दस-दस जिन प्रतिमाएँ इत्यादि और ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के उपकरण रखना।''

सुरदत्त श्रेष्ठी ने आचार्य सुखेन्द्रसूरीश्वरजी के पास धामधूमपूर्वक दीक्षा ग्रहण की। पाँच समिति और तीन गुप्ति - इस प्रकार आठ प्रवचन माताओं का पालन करते हुए सत्रह भेद से संयम की आराधना की। बारह प्रकार के तप करके मासक्षमण आदि करके मृत्यु को प्राप्त होकर प्राणत देवलोक में बीस सागरोपम आयुष्य वाले देव हुए। वहाँ अनेक दैवीय सुख भोगकर आयुष्य पूर्ण करके वहाँ से च्यवन करके इस जम्बूद्वीप के

महाविदेह क्षेत्र में पुष्कलावती विजय की मंगलावती नगरी में राजा सिंहसेन की पत्नी गुणसुन्दरी की कोख से पुत्र के रूप में जन्म लिया । पूर्वभव की आराधना के कारण पुत्र रूपवान और तेजस्वी था। उसका नाम जयसेन रखा गया। जब जयसेन ने युवावस्था प्राप्त की तब उसके पिता ने शीलवती नामक कन्या से उसका पाणिग्रहण करवाया।

उसने पर्याप्त विषयसुख भोगे फिर कालक्रम से वैराग्य अनुभव करके उत्तम गुरु से चारित्र ग्रहण करके उत्तम ज्ञान प्राप्त किया। एक बार गुरु से अलग विहार करते हुए अपने नगर के उपवन में जाकर कायोत्सर्ग में अकेले खड़े रहे। वहाँ वनदेवता उनकी परीक्षा करने के लिए उन्हें डराने लगे। देव ने नेवले, बिच्छू, हाथी, सिंह, व्याघ्र आदि अनेक रूप धारण करके उपसर्ग किए पर जयसेन मुनि ने बिना डरे सारे उपसर्ग सहते हुए शुक्लध्यान से केवलज्ञान को प्राप्त किया। चार निकाय के देवताओं ने उनके केवलज्ञान का महोत्सव किया और जो देव उपसर्ग कर रहा था उस देव ने भी प्रतिबुद्ध होकर सम्यक्त्व को प्राप्त किया और मोक्ष गया।

जयसेन मुनि की पत्नी शीलवती ने भी चारित्र ग्रहण किया। पंचमहाव्रत का पालन करते हुए एक बार जब वह काउसग्ग में थीं तब एक मिथ्यात्वी देव ने इक्कीस दिन तक अलग-अलग अनेक उपसर्ग किए। पर वह चलित नहीं हुईं अतः वह देव शीलवती से बोध प्राप्त करके वापस देवलोक चला गया और बोध प्राप्त कर वह देव वहाँ से महाविदेह में च्यवित होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा। साध्वी शीलवती भी केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्तिपद को प्राप्त हुईं।

इस प्रकार प्रभु महावीरस्वामी जी ने गौतमस्वामीजी को पोषदशमी की कथा सुनाई।

मेरु त्रयोदशी पर्व

श्री ऋषभदेव के निर्वाण के पचास लाख कोड़ाकोड़ी सागरोपम के बाद श्री अजितनाथजी तीर्थंकर हुए। उन दोनों परमात्माओं के समय के बीच श्री अयोध्या नगरी के इक्ष्वाकुवंश में काश्यप गोत्रीय अनन्तवीर्य नामक एक राजा हुए। उनके पास बहुत ऋद्धि थी। पांच सौ राजा सदैव उनकी आज्ञा में उनकी सेवा करते थे। वे बहुत बलिष्ठ भी थे। उनकी पांच सौ रानियाँ थीं। उनकी पटरानी का नाम प्रियमती था। उनके महाचतुर प्रधान का नाम धनंजय था।

यह राजा हर प्रकार से सुखी था लेकिन वह निःसन्तान था। राज्य के सुख को कोई भोगने वाला नहीं था। इस बात का उसे बहुत दुःख था। पुत्र प्राप्ति के लिए उसने कई उपाय किए पर सभी उपाय व्यर्थ गए। एक बार कोणिक नामक एक साधु राजा के यहाँ वहोरने के लिए आए। राजा और रानी दोनों ने साधु महाराज साहब को अत्यन्त भावोल्लास के साथ वन्दन करते हुए शुद्ध आहार वोहराया। बाद में यह जिज्ञासा भी व्यक्त की, कि क्या उन्हें सन्तान सुख प्राप्त होगा भी या नहीं? साधु महाराज ने कहा कि, ''ऐसे प्रश्न का उत्तर देना साधु का धर्म नहीं है।'' पर बार-बार यही प्रश्न पूछे जाने पर साधु के मन में करुणाभाव पैदा हुआ। उन्होंने कहा कि, ''आपके यहाँ पुत्र का जन्म तो होगा लेकिन वह पंगु होगा।'' राजा और रानी को यह सुनकर बहुत दुःख हुआ लेकिन साथ ही यह जानकर प्रसन्नता भी हुई कि उन्हें पुत्र की प्राप्ति होगी।

अनुकूल समय पर रानी ने गर्भ धारण किया। नौ महीने पूरे होने पर पुत्र ने जन्म लिया। राजा को यह हर्षित कर देने वाले समाचार मिले तो उन्होंने बहुत प्रसन्नता अनुभव की तथा बड़ा जन्ममहोत्सव किया। पुत्र का नाम पिंगल रखा गया। बारहवें दिन परिवार को भोजन कराने के बाद भी पुत्र को अन्तःपुर से बाहर नहीं निकाला। सबके पूछने पर कहते थे कि, ''वह बड़ा रूपवान है। उसे किसी की नजर न लग जाए इसलिए बाहर नहीं लाते।'' यह बात सारे नगर में फैल गई।

इसी समय में अयोध्या नगरी से सवा सौ योजन की दूरी पर स्थित मलय नामक एक देश में ब्रह्मपुर नामक एक नगर था। वहाँ इक्ष्वाकुवंश के काश्यप गोत्र के सत्यरथ नामक राजा राज्य करते थे। उनकी पटरानी का नाम इन्दुमति था और उनकी पुत्री का नाम गुणसुन्दरी था। वह बहुत सौन्दर्यवान थी। इस राजा

को भी कोई पुत्र नहीं था, सन्तान के रूप में मात्र यही एक पुत्री थी। इसलिए राजा ने उसे स्त्री की चौसठ कलाओं में कुशल बनाया। युवावस्था प्राप्त होने पर पुत्री के लिए उचित वर की खोज शुरू की। उसी समय अपने नगर के कुछ व्यापारी गाड़ियों में अलग-अलग किराने लादकर परदेश व्यापार हेतु जा रहे थे। तब राजा ने उन व्यापारियों को अपनी राजकुमारी के लिए सुयोग्य वर खोजने के लिए कहा और यदि उचित लगे तो सगाई कर लेने के लिए भी कह दिया। व्यापारियों ने राजा की बात का स्वीकार करते हुए देशान्तर के लिए प्रस्थान किया। घूमते-घूमते हुए वे अयोध्या नगरी में आए। सारा किराना बेचकर अपने देश के योग्य अन्य किराना खरीदकर वापसी यात्रा की तैयारी करने लगे। उसी समय अयोध्यावासियों के मुख से 'राजकुमार की रूप-राशि अद्भूत है', ऐसा सुनकर व्यापारी राजा के पास गए और पिंगलकुमार की सगाई गुणसुन्दरी के साथ करवा दी। राजा ने व्यापारियों का आदर सम्मान करके उसका ऋण माफ किया। व्यापारी भी प्रसन्नता अनुभव करते हुए अपने नगर लौट आए।

वापस लौटते ही व्यापारियों ने अपने राजा को सारी बातें बताईं। राजा भी कुमार की रूपराशि के बखान सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और साथ ही पुत्री की सगाई हो गई - इस बात से भी बहुत आनन्दित हुए। विवाह के आयोजन से पूर्व राजा ने पिंगलकुमार को अपने राज्य में बुलाने के आमन्त्रण के साथ अपने सेवकों को अयोध्या भेजा। उन्होंने अयोध्या के राजा अनन्तवीर्य से विनती की, ''कुमार को विवाह संस्कार सम्पन्न करने के लिए शीघ्र भेजिए।'' इस बात को सुनकर राजा बहुत उदास हो गया। राजा ने महल में जाकर अपने प्रधान को एकान्त स्थान पर बुलाया और सारी बात बताई। प्रधान ने कुछ सोच-विचार करके कुमार को निमन्त्रित करने हेतु आए हुए सेवकों को बुलाकर कहा कि, ''राजकुमार अभी यहाँ नहीं है। वे यहाँ से दो सौ योजन की दूरी पर उनके ननिहाल मुहग्गीपट्टण नामक नगर में हैं। इसलिए अभी उनका विवाह हो पाना सम्भव नहीं है। जब वे वापस लौटकर आ जाएँगे तब आपको सूचित करेंगे और भेजेंगे।''

सेवकों ने कहा, ''हे स्वामिन्! हमारा नगर यहाँ से बहुत दूर है। इसलिए बार-बार यहाँ आना हमारे लिए अनुकूल नहीं है। अतः आप हमें विवाह की तिथि निश्चित करके बताइए और आप सब भी शीघ्रातिशीघ्र पधारिए।'' यह सुनकर प्रधान ने सेवकों से कहा कि, ''आज से सोलहवें महीने हम विवाह हेतु आएँगे।'' सेवकों ने अपने देश में जाकर राजा को सारी बात बताई।

इस तरफ राजा अनन्तवीर्य को चिन्ता होने लगी कि सोलह महीने तो पलक झपकते ही पूरे हो जाएँगे। उसके बाद क्या करेंगे? और वे उपाय खोजने लगे। उसी समय वनपालक ने राजा अनन्तवीर्य को बधाई दी कि हमारे नगर के उद्यान में पाँच सौ साधुओं के परिवार के साथ चार ज्ञान के धारक गांगिलाचार्य का आगमन हुआ है। राजा ने हर्षित होकर वनपालक को पर्याप्त द्रव्य उपहार के रूप में दिया। राजा अपने परिवार के साथ ऋद्धि सहित आचार्यदेव को वन्दना करने के लिए उद्यान में गए। वहाँ गुरुदेव को वन्दन करके धर्मोपदेश श्रवण के लिए बैठे। गांगिलाचार्य ने उपदेश देते हुए कहा, ''दया तो धर्म का मूल है और पाप का मूल हिंसा है। जो व्यक्ति स्वयं हिंसा का आचरण करे और अन्य के पास करवाये तथा जो हिंसा कर रहा हो उसकी अनुमोदना करे - ये तीनों एक समान फल के अधिकारी होते हैं। इसलिए जो पाप करता है और मन में कोई डर भी नहीं रखता तो उसके हृदय में दया नहीं है। इसलिए जो निर्दयी है वह अनेक एकेन्द्रिय जीवों का नाश करता है। वह प्राणी परभव में पित्त, श्लेष्म आदि अनेक रोगों का भोगी बनता है। जो जीव बेइन्द्रिय जीवों का नाश करता है वह परभव में मूक, मुखरोगी और दुर्गन्धी श्वास वाला बनता है। जो जीव तेइन्द्रिय जीवों का नाश करता है उस जीव को परभव में नासिका का रोग होता है। जो जीव चउरिन्द्रिय जीव का नाश करता है वह परभव में काना, अँधा और भेंगा इत्यादि आँख से सम्बन्धित अनेक प्रकार के रोगों को भोगता है। और जो पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा करता है वह जीव दूसरे भव में पांचों इन्द्रियों का स्वास्थ्य प्राप्त नहीं करते। अतः हे भव्य जीव! हिंसा का त्याग करो, झूठ का त्याग करो और सत्य वचन बोलो।''

गुरु की देशना का श्रवण करके राजा अनन्तवीर्य ने गुरुदेव से पूछा कि, ''मेरे पुत्र ने ऐसे कौनसे कर्म किए होंगे कि उसे पंगुता मिली?''तब गांगिलाचार्य ने पिंगल का पूर्वभव बताते हुए कहा: ''हे राजा! इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में अचलपुर नामक एक नगर में महेन्द्रध्वज नामक एक राजा था। उसकी पटरानी का नाम उमया और पुत्र का नाम कुमार सामन्तसिंह था। एक बार जब राजकुमार पाठशाला पढ़ने के लिए जा रहा था तब रास्ते में उसे कुछ जुआरी मिले। उनकी संगत के प्रभाव में आकर कुमार जुआ खेलना सीख

गया। उसके बाद तो वह सातों दुर्व्यसनों का सेवन करने लगा। राजा ने उसे उन दुर्व्यसनों को छोडने के लिए बहुत समझाया लेकिन कुमार पर उसका कोई असर नहीं हुआ। अतः राजा ने उसे अयोग्य समझकर देश निकाला दे दिया। फिर भी उसने व्यसनों का त्याग नहीं किया। अन्य देशों में घूमते हुए वह कुमार शिवपुर नगर पहुँचा। वहाँ उसके रूप-रंग से प्रभावित हुए पंचक नामक एक सेठ ने उसे उत्तम पुरुष समझकर तथा उसकी सुकोमल काया को देखकर वह किसी प्रकार के परिश्रम वाला काम कर नहीं सकेगा ऐसा जानकर उसे अपने घर के पास वाले जिनालय में पुजारी के रूप में रखा। लेकिन कुमार दुष्ट स्वभावी होने के कारण भगवान के पास रखे अक्षत, सुपारी, फल आदि चोरी छिपे उठाकर बेचने लगा और उससे मिलने वाले धन से जुआ खेलने लगा। पंचक सेठ को जब पता चला तो उसने कुमार को अच्छी सीख दी कि, ''हे भले आदमी! जो प्राणी देवद्रव्य आदि का सेवन करता है उसे लम्बे काल तक संसार में परिभ्रमण करते रहना पड़ता है। इसलिए अब से तुम ऐसा कार्य कभी मत करना।'' पर उस दुष्ट और मिथ्यादृष्टि ने तीव्र अज्ञान के उदय से कुकर्म नहीं छोड़ा।

एक दिन उसने भगवान का छत्र आदि आभूषण चोरी करके बेच दिये और उस द्रव्य से अनाचार का सेवन किया। पंचक सेठ को इस बात का पता चला तो उसने कुमार को घर से और नौकरी से निकाल दिया। वहाँ से निकलकर वह वनों में भटकते हुए मृग आदि जीवों की हिंसा करके अपना पेट पालने लगा। इस वन में तापसों का एक आश्रम था वहाँ अनेक तापस तप करते थे। इस आश्रम में मृग भी रहते थे। एक बार उस आश्रम में एक सगर्भा मृगी आयी। इस सामन्तकुमार ने उसे देखा और बाणों से उसके चारों पैर बींध दिये। वह मृगी धरती पर गिर गई। मृगी को इस प्रकार छलनी होकर गिरते हुए एक तापस ने देखा तो उसने उसे धर्म सुनाया। इस धर्मश्रवण से मृगी मरकर शुभ गति को प्राप्त हुई। तापस ने सामन्त कुमार को श्राप देते हुए कहा, ''जिस प्रकार तूने मेरी मृगी के पैरों का छेदन किया है उसी प्रकार तू भी परभव में पंगु होगा।'' तापस का क्रोध देखकर सामन्तकुमार वहाँ से दूर वन में चला गया। अशुभ कर्म के उदय से उसे वन में शेर मिला। उसने कुमार पर धावा बोलकर मार डाला। अशुभ ध्यान में मरकर वह कुमार नरक गति में गया। वहाँ आयुष्य पूर्ण करके तिर्यंच के और नारकी के असंख्य भव किए।

हँसते हुए बाँधे हुए कर्म रोने से नहीं छूटते, उन्हें भोगना ही पड़ता है।

१) वह महाविदेह क्षेत्र के कुसुमपुर नगर के राजा विशालकीर्ति की शिवा नामक एक दासी की कोख से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसे कोढ़ का रोग लगा। रोग के कारण हाथ-पैर झड़ जाने से वह पंगु हो गया। उसके अन्तकाल में उसकी दासी माँ ने नवकार महामन्त्र का श्रवण कराया इसलिए उसे समाधि-मृत्यु प्राप्त हुई।

२) आने वाले भव में वह व्यन्तर देव हुआ।

३) वहाँ से च्यवित होकर इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में सौहार्दपुर नगर के सूरदास सेठ की पत्नी वसन्ततिलका की कोख से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम स्वयंप्रभ रखा गया। वह बहुत गुणवान और विवेकशील था। लेकिन उसके पैर में फोड़े-फुंसी बहुत होते रहते थे इसलिए वह चल नहीं सकता था इस कारण वह दुःखी रहता था। माता-पिता भी उसको लेकर बहुत चिन्तित रहते थे। ऐसे में उनके नगर से होकर एक बहुत बड़ा संघ श्री शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करने के लिए जा रहा था। यह सुनकर सेठ

अपनी पत्नी और पुत्र को साथ लेकर उस पैदल संघ में जुड़े। संघ पादविहार करते हुए श्री सिद्धक्षेत्र पहुँच गया। वहाँ सभी लोग गिरिराज पर दर्शन करने के लिए ऊपर चढ़े। वहाँ श्री ऋषभदेव प्रभु की भक्ति की। सूरजकुण्ड के जल में पुत्र को स्नान करवाया, जिससे उसका दुःख दूर हो जाए। लेकिन वह जल देवता द्वारा अधिष्ठित होने से और स्वयंप्रभकुमार के बहुत सारे कर्म भी भोगने बाकी थे, इसलिए कुण्ड का जल पैर को छू नहीं रहा था। यह देखकर सबको आश्चर्य हुआ। वहाँ एक मुनिभगवन्त थे। उनसे कुमार के रोग के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि, ''पूर्वभव में इसने देवद्रव्य का भक्षण किया था तथा एक मृगी के चारों पैर छलनी कर दिए थे। उनमें से अनेक कर्म उसकी अकामनिर्जरा से क्षय हो गए हैं, पर अभी कुछ और क्षय होने बाकी हैं। ये कर्म निकाचित चिकने हैं। उन्हें भोगने के सिवाय और कोई चारा नहीं है। इसलिए कुमार को इस तीर्थजल का स्पर्श नहीं हो रहा है।''

मुनिराज के ऐसे वचन सुनकर तीनों को वैराग्य हुआ। संघ से वापस घर लौटकर उन्होंने धर्म प्रवृत्ति बढ़ाई। कुमार ने सोलह हजार वर्ष तक कोढ़, फोड़े-फुंसी आदि अनेक रोगों की वेदना को भोगकर अन्त में कर्म का प्रायश्चित्त किया और शुभ भाव में मृत्यु को प्राप्त किया।

५) वहाँ से वह पहले देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुआ।

६) वहाँ से च्यवित होकर हे राजन! तुम्हारे घर पिंगलकुमार पुत्र के रूप में जन्म लिया है। ''इस प्रकार गांगिलाचार्य ने कुमार का पूर्वभव सुनाया, ''मिथ्यात्व के उदय से जीव अनन्त कर्मों का बन्ध करता है। उसी प्रकार तुम्हारे पुत्र ने भी बुरे कर्मों का बन्ध किया है। इसलिए वह पंगु हुआ है।'' राजा ने पूछा कि, ''ये कर्म किस प्रकार भोगे जाएँगे?'' तो गुरुदेव बोले, ''तीसरे आरे के अन्त होने में जब तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी थे, तब माघ वदी त्रयोदशी के दिन श्री ऋषभदेव परमात्मा का निर्वाण कल्याणक हुआ। इसलिए उस दिन की विशेष महत्ता है। अतः उसे बड़ा पर्व मानकर जब वह दिन आए तब उस दिन चौविहार उपवास करके रत्न के पांच मेरु बनाना। चार दिशाओं में चार छोटे मेरु बनाना, उसके आगे चारों दिशाओं में चार नन्दावर्त्त करके धूप-दीप आदि करके उसकी पूजा करना। इस प्रकार तेरह वर्ष और तेरह महीने तक करना। उस दिन 'श्री ऋषभदेव पारंगताय नमः' मन्त्र का दो हजार बार जाप (२० माला) करना। यदि इस प्रकार हर महीने करोगे तो सारे कर्मों का नाश हो जाएगा। इस भव तथा आने वाले भव में सुख सम्पदा प्राप्त होगी।

गुरुदेव से बोध ग्रहण करके राजा अनन्तवीर्य ने गुरुदेव के समक्ष पुत्र से व्रत अंगीकार करवाया। प्रथम व्रत माघ वदी त्रयोदशी से शुरू किया। उसी दिन पैर के अंकुर ऊपर आने लगे। इस प्रकार तेरह महीने तक यह व्रत करने से सुन्दर हाथ और पैर प्रकट हुए। इस घटना से राजा, रानी और पुत्र सभी बहुत हर्षित हुए। धर्म की महिमा का साक्षात् अनुभव होने पर उन्होंने धर्म प्रवृत्ति में वृद्धि की और वैराग्यवान बने। पिंगलकुमार का गुणसुन्दरी के साथ पाणिग्रहण हुआ। तदुपरान्त उसका अन्य अनेक कन्याओं के साथ भी विवाह किया। पुत्र को राज्य सौंपकर राजा ने गांगिलाचार्य से चारित्र ग्रहण किया। अतिचाररहित संयम का पालन करते हुए श्री शत्रुंजय महातीर्थ पर अनशन करके कर्म खपाये और मोक्षपद को प्राप्त हुए।

पिंगलकुमार ने त्रयोदशी की विधि तेरह वर्ष और तेरह महीने तक सुन्दर रूप से पूर्ण की और पारणे पर उद्यापन करके भगवान के तेरह बड़े शिखरबन्ध जिनालय निर्मित करवाकर उनमें सोने, रूपे और रत्नों की तेरह-तरह प्रतिमाएँ भरवाकर पाँच मेरू करके चढ़ाये। तेरह बार श्री सिद्धाचलजी के संघों का आयोजन किया, तेरह स्वामीवात्सल्य किए। इसके उपरान्त कई पूर्व वर्ष तक मेरू त्रयोदशी का व्रत करते हुए राज्य का पालन किया। अन्त में अपने महसेन नामक पुत्र को राज्य सौंपकर अनेक राजपुरुषों के साथ गुरुदेव सुव्रताचार्य से दीक्षा अंगीकार की। द्वादशांगी का अध्ययन करके आचार्य पद को प्राप्त किया। शुक्लध्यान में क्षपकश्रेणी चढ़कर बारहवें-तेरहवें गुणस्थान पर पहुँचकर केवलज्ञान प्राप्त किया।

इस प्रकार इस पिंगल राजा से मेरु त्रयोदशी व्रत का प्रारम्भ हुआ। अनेक काल तक इस व्रत में लोग रत्नमय मेरू चढ़ाते थे बाद में सोने का मेरू चढ़ाने लगे। वर्तमान में घृत (घी) का मेरू चढ़ाते हैं। इस तप से इस लोक में मनवांछित सुख-सम्पदा मिलती है और परलोक में देवगति के सुख और मोक्ष के अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए यह व्रत करना चाहिए।

रोहिणी पर्व

श्री चम्पानगरी में तीर्थंकर प्रभु श्री वासुपूज्य का मधवा नामक पुत्र राज्य करता था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मणा था। इस रानी ने एक के बाद एक आठ पुत्रों को जन्म दिया। उनकी एक भी पुत्री नहीं थी। रानी को पुत्री की चाह थी। फिर रानी ने आठ पुत्रों के बाद नौंवी सन्तान के रूप में पुत्री को जन्म दिया। वह माता-पिता की बहुत दुलारी थी। उसका नाम रोहिणी रखा गया। रोहिणी लाड-प्यार में बड़ी हुई, लेकिन वह समस्त कलाओं को सीखकर चतुर और कुशल बनी। उसके युवावस्था में प्रवेश करते ही राजा ने उसके लिए स्वयंवर मण्डप की रचना करवाई। इस स्वयंवर में कुरु, कौशल, कर्णाट, मगध, मालव, गुर्जर, कच्छ, सिन्धु, सौराष्ट्र और नागपुर आदि अनेक देशों के बड़े-बड़े राजा और विद्याधर आए थे।

राजा ने अपनी पुत्री रोहिणी को सोलह शृंगारों से सजाकर दासी के साथ हाथ में वरमाला लेकर स्वयंवर मण्डप में भेजा। दासी प्रत्येक राजा और कुमारों का परिचय कराते हुए दर्पण में राजकुमारों के रूप दिखाती थी। कुमारी ने नागपुर नगर के वीतशोक नामक राजा के पुत्र अशोककुमार के गले में वरमाला पहनाई। उसे योग्य वर जानकर सब लोग अतिहर्षित हुए। राजा ने पुत्री का विवाह महोत्सव बड़ी धूमधाम से किया तथा आए हुए सभी राजाओं को हाथी, घोड़े, वस्त्र, अलंकार, भोजन आदि सब कुछ दिया। इसी प्रकार अशोककुमार तथा पुत्री रोहिणी को भी हाथी, घोड़े, दास, दासी, सोना-रुपे के आभूषण आदि बहुत कुछ उपहार के रूप में देकर नागपुर भेजा। राजा वीतशोक ने भी बड़ा महोत्सव करके पुत्र का नगर प्रवेश कराया।

पुत्र अशोककुमार को राज्य का शासन सौंपकर राजा वीतशोक ने दीक्षा अंगीकार कर ली। राजा अशोक पत्नी के साथ संसार सुख को भोगने लगे। रोहिणी ने आठ पुत्रों और चार पुत्रियों को जन्म दिया। एक बार राजा और रानी दोनों महल में ऊपर बैठे थे। उस महल के पीछे एक व्यापारी का घर था। उसके एक पुत्र की मृत्यु हो गई थी इसलिए घर के सभी लोग तीव्र रूदन कर रहे थे और बहुत गहरा दुःख अनुभव कर रहे थे।

यह दृश्य देखकर रोहिणी ने अपने पति से पूछा कि, ''यह किस प्रकार का नाटक है?'' उसको यह सब नया-नया लग रहा था। उसे पता ही नहीं था कि दुःख किसे कहते हैं? राजा को ऐसा लगा कि रानी अहंकार कर रही है, मद कर रही है। अतः राजा ने रानी से कहा कि, ''ऐसा मद करना उचित नहीं है। संसार तो अनित्य है।'' रानी ने राजा से कहा कि, ''हे स्वामी! मैं कोई मद या गर्व नहीं कर रही। आप इसे गलत न समझें। इस प्रकार का दृश्य (नाटक) मैंने कभी भी नहीं देखा है, इसलिए मैंने आपसे पूछा। आप मुझे मदवान क्यों समझ रहे हैं?'' राजा ने कहा, ''यदि ऐसा है तो मैं तुम्हें अभी ऐसा नाटक करके दिखाता हूँ। यह देखकर तुम भी संसार की अनित्यता सीख जाओगी।'' ऐसा कहकर रानी की गोद में खेल रहे पुत्र को लेकर राजा ने गवाक्ष में से नीचे फेंक दिया। यह दृश्य देखकर वहाँ खड़े सभी लोगों में हाहाकार मच गया।

लेकिन इस दृश्य को देखकर रोहिणी पर कोई असर नहीं हुआ न ही इस घटना को लेकर उसे कोई दुःख या शोक हुआ। उसकी समझ में यह भी नहीं आया कि राजा ने क्या किया? क्यों किया? वह तो इस घटना को सहज भाव से देखती रही।

बालक को जब नीचे फेंका गया उस समय उसके पुण्य और दीर्घ आयुष्य के कारण उस बालक को पुरदेवी ने बीच में से ही पकड़ लिया। इस दैवी सहायता से बालक बच गया। घटनास्थल पर खड़े सभी लोगों ने विस्मय और प्रसन्नता का अनुभव किया। राजा ने रानी से कहा की, ''मैं तुम्हें रोने और विलाप करने की कला सिखाना चाहता था। पर तुमने किसी भव में कुछ ऐसा विशिष्ट पुण्य उपार्जित किया होगा जिसके फलस्वरूप तुम्हें दुःख की समझ नहीं है और दुःख झेलना भी नहीं पड़ रहा है।''

एक बार भगवान श्री वासुपूज्यस्वामी के शिष्य रुप्यकुम्भ और सुवर्णकुम्भ नामक दो मुनिवर नगर के बाहर पधारे होने की खबर सेवकों ने राजा को दी। राजा परिवार सहित आडम्बरपूर्वक मुनियों की वन्दना करने के लिए गए। मुनियों की वन्दना करके राजा धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए बैठे। राजा ने मुनि महाराज से पूछा कि, ''हे गुरुदेव! यह मेरी रानी रोहिणी है। उसने पूर्वभव में ऐसा कौनसा सुकृत किया है कि जिससे उसे दुःख का अनुभव नहीं होता और मुझे भी उसके प्रति बहुत स्नेह रहता है?'' मुनिराज ने कहा कि, ''हे राजन्! मैं आपको उसके पूर्वभव के बारे में कहता हूँ, सुनिए:''

पिछले भव में उज्जयन्तगिरिपुर नगर में पृथ्वीपाल नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सिद्धिमती था। एक बार वे दोनों वन में क्रीड़ा करने के लिए गए। उस समय मासक्षमण का पारणा करने के लिए मुनिराज गुणसागर नगर में पधारे। राजा ने उन्हें देखा और वन्दन किया और रानी से कहा, ''आप महल में जाइए और साधु भगवन्त को शुद्ध आहार वोहराइए। यह ऋषिवर जंगम तीर्थ स्वरूप हैं।''

रानी को अपनी क्रीड़ा में विक्षेप हुआ होने के कारण वह खीजकर बड़बड़ाती हुई मन ही मन सोचने लगी कि यह मुण्डन किया हुआ साधु कहाँ से आ गया? उसने मुनिराज को कड़वा तुम्बा वोहरा दिया। मुनि महाराज को जब इसका पता चला तो उन्होंने सोचा कि, 'यदि मैं इसे परठ दूँगा (भूमि पर विसर्जित करना) तो जीवों की हिंसा होगी और अनेक कर्मों का बन्ध होगा।' ऐसा न हो, इसलिए उन्होंने स्वयं उसी से पारणा कर लिया। कड़वे तुम्बे का विष सारे शरीर में फैल गया और मुनिराज शुभ ध्यान में मरकर मोक्ष गए। राजा को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने रानी को महल से बाहर निकाल दिया। रानी जंगल में भटकने लगी। उसके उग्र पाप के उदय के कारण उसे सातवें दिन कोढ़ हुआ और कुछ समय के बाद वह मरकर छट्ठी नरक में गई। वहाँ से निकलकर तिर्यंच में और एक के बाद एक अनेक भव सभी नरकों में भटकती रही।

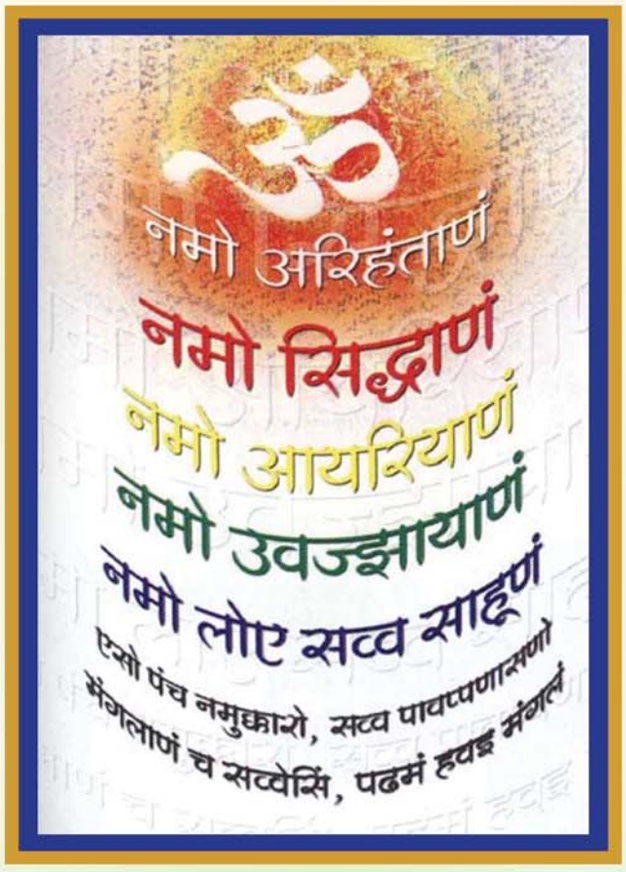

एक बार चण्डालिनी के भव में उसने मरते समय श्री नवकार मन्त्र का स्मरण किया और उसके फलस्वरूप उसने उसी नगर के सेठ वनमाली की पत्नी धनवती की कोख से दुर्गन्धा नामक पुत्री के रूप में जन्म लिया। जब वह युवावस्था में आई तब उसके माता-पिता ने उसका विवाह महोत्सव किया। विवाह के दौरान वरराजा के साथ हस्तमिलाप करते समय दूल्हे को दुर्गन्धा का हाथ अग्नि की भांति जल रहा हो ऐसा लगा। अतः वह मण्डप में ही उसका हाथ छुड़ाकर चला गया। दूल्हे के पिता ने पुत्र से पूछा तो उसने कहा कि, ''पिताजी आप कहेंगे तो मैं विष खा लूँगा या फांसी पर झूल जाऊँगा पर इस कन्या से विवाह कदापि नहीं करूँगा। पिता ने उसकी बात को मान लिया और कहा कि तुम्हारा विवाह किसी अन्य अच्छी कन्या से कराऊँगा। ऐसा कहकर सब वापस लौट गए।''

एक बार कन्या के पिता ने अपने घर एक महास्वरूपवान भिखारी को भीख मांगने के लिए आया हुआ देखा। उससे कहा कि यदि तुम मेरे घर में ही रहोगे तो मेरी बेटी का विवाह तुम से करवाऊँगा। भिखारी ने सहमति दे दी। सेठ ने उसे स्नान करवाकर नए वस्त्र और आभूषण देकर पुत्री से विवाह करवाया। सोने के समय जब दुर्गन्धा पति के पास गई तब उस भिखारी को उसमें से दुर्गन्ध आने लगी। इसलिए वह सोचने लगा कि पेट भरने के लिए भीख मांगना अच्छा पर ऐसी पत्नी के साथ तो रहा नहीं जा सकता।

इसलिए वह सेठ द्वारा दिये गए नए वस्त्र और आभूषण वहाँ छोड़कर अपने पुराने कपड़े पहनकर चला गया। सुबह होने पर सेठ और सेठानी को पता चला तो उन्होंने अपनी पुत्री को समझाया कि, ''कर्म के योग से तुम्हारे भाग्य में वर का योग नहीं है। कर्मों ने तीर्थंकर तथा चक्रवर्ती वासुदेव को भी नहीं छोड़ा, तो हम तो किस खेत की मूली हैं? अतः अब तुम धर्म की शरण ग्रहण करो। धर्म के प्रभाव से ही सारे सुख प्राप्त होंगे।'' पुत्री ने भी संवेग भाव धारण किया और तप-जप करने लगी।

एक बार एक ज्ञानी गुरु भगवन्त सेठ के यहाँ पधारे। सेठ ने पुत्री को ऐसा रोग होने का कारण पूछा तब गुरुदेव ने उसके पूर्वभव बताए। जब सेठ ने पूछा कि यह रोग कैसे दूर हो सकता है? तो गुरुदेव ने कहा कि, ''सात वर्ष और सात महीने तक रोहिणी तप कराइए। जिस दिन रोहिणी नक्षत्र बैठे उस दिन चौविहार उपवास करो। पूरे भावों के साथ श्री वासुपूज्यस्वामी भगवान की रत्नमयी प्रतिमा की पूजा करो। तप पूर्ण होने पर

सोल्लास उद्यापन करो। सुगन्धकुमार ने ऐसा तप किया था इससे उसके सारे दुःखों का नाश हो गया। इसलिए तुम भी यह तप करो।'' दुर्गन्धा ने गुरुदेव से पूछा कि, ''सुगन्धकुमार कौन था? उसके बारे में हमें बताइए।''

तो गुरुदेव बोले, ''सिंहपुर नगर में सिंहसेन नामक राजा था।'' उसकी पत्नी कनकप्रभा ने एक पुत्र को जन्म दिया। कर्म के उदय से उसके पूरे शरीर से अतिशय दुर्गन्ध आती रहती थी इसलिए वह सबको अप्रिय था। एक बार उस नगरी में पद्मप्रभस्वामी पधारे। समस्त परिवार प्रभु के पास गया। वन्दन करने के बाद राजा ने प्रभु से पूछा कि, ''मेरा पुत्र किस कारण से दुर्गन्धी हुआ? उसने पूर्वभव में ऐसा क्या किया था?'' तब भगवान ने कहा: ''नगपुर से बारह योजन की दूरी पर नील पर्वत की एक शिला पर एक मासोपवासी साधु धर्मध्यान कर रहे थे।'' उस समय एक व्याघ्र (शिकारी) उन पर उपद्रव करने लगा। एक बार जब वह साधु गोचरी के लिए गाँव में गए थे तब शिकारी उस शिला पर आग जलाकर साधु को जला देने का प्रयत्न

करने लगा। साधु लौटकर आए और उसी शिला पर आकर बैठे। उन्होंने उष्ण परिषह सहन किया, केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष सिधार गए। वह व्याघ्र अपने दुष्ट कर्मों के कारण मरकर (१) सातवीं नरक गया। (२) उसके बाद सर्प बनकर पाँचवीं नरक गया, फिर (३) सिंह होकर चौथी नरक गया, फिर (४) चित्रक होकर तीसरी नरक गया, फिर (५) मार्जर (बिलाव) बनकर दूसरी नरक गया और फिर (६) उल्लू होकर पहली नरक में गया। इस प्रकार भ्रमण करते-करते वह एक (७) श्रावक के घर पैदा हुआ। श्रावक होने के कारण नवकार मन्त्र सीखा और पशुपालन का व्यवसाय करने लगा। एक बार वन में दावानल हुआ। यह पशुपालक जहाँ सोया हुआ था आग जलती हुई वहाँ आई और उसके अंग को जकड़ लिया। अन्तकाल में वह नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए जलकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। वही पशुपालक तुम्हारा पुत्र हुआ है। उसके कर्म अभी पूरे हुए नहीं खपे हैं इसलिए बाकी बचे कर्मों के दोष के कारण उसका शरीर दुर्गन्धित हुआ है।'' इस प्रकार दुर्गन्ध शरीर वाले राजकुमार को अपना पूर्वभव सुनते हुए जातिस्मरण ज्ञान हुआ। अतः वह गुरु के चरण पकड़कर कहने लगा कि, ''मैं इन दोषों से कैसे मुक्त हो सकूँगा?'' तब गुरु भगवन्त ने उसे रोहिणी तप करने के लिए समझाया। वह तप करने से उसका शरीर सुगन्धित हुआ।

अतः हे दुर्गन्धा! तू भी यह तप कर। इस तप से तुम्हारे सारे दुःख नष्ट हो जाएँगे।'' दुर्गन्धा ने रोहिणी तप किया। शुभ ध्यान से तपस्या करते हुए अपने पापों की निन्दा करने से उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ और उसे अपना पूर्वभव दिखाई दिया। अधिक तप करके आयुष्य पूर्ण होने पर शुभ ध्यान में मृत्यु को प्राप्त होकर वह देवलोक में देव के रूप में हुई, वहाँ से च्यवित होकर वह चम्पानगरी के मधवा राजा की पुत्री हुई। उसका नाम रोहिणी रखा गया जिससे आपका विवाह हुआ है। उसने पूर्वभव में बहुत दान किया था इसलिए वह आपकी पटरानी हुई है। पूर्व में किए रोहिणी तप के प्रभाव से इसे दुःख क्या है, इसका पता

नहीं है। तप का उद्यापन करने से उसके प्रभाव से उसे यह ऋद्धि प्राप्त हुई है।

वैराग्य से भरी सभा ने प्रश्न किया, ''हे भगवन्! फिर सुगन्धकुमार का क्या हुआ?'' गुरु ने बताते हुए कहा, ''सिंहसेन राजा ने सुगन्धकुमार को राज्य की धुरा सौंपी और दीक्षा अंगीकार की। सुगन्धकुमार ने भी धर्मपरायण करते हुए मृत्यु को प्राप्त किया और देवलोक में गया। वहाँ से च्यवित होकर पुष्कलावती विजय की पुण्डरिकिणी नगरी में केवलकीर्ति राजा के घर अर्ककीर्ति नामक चक्रवर्ती के रूप में पैदा हुआ। फिर दीक्षा लेकर बारहवें देवलोक में इन्द्र के रूप में जन्म लिया। वहाँ से च्यवित होकर यहाँ तुम अशोक के नाम से राजा हुए हो। तुम्हारी रानी ने और तुमने पूर्वकाल में एक समान तप किया है। इसलिए तुम्हारा स्नेह उसकी ओर अधिक आकर्षित रहता है।''

राजा ने पुनः गुरु से पूछा कि, ''हे स्वामी! मेरी रानी के आठ पुत्र और चार पुत्रियाँ उसके किस पुण्योदय से जन्मे?''तब गुरु ने कहा, ''हे भाग्यशाली! आठ में से सात पुत्र तो पूर्व भव में मथुरानगरी में अग्निशर्मा नामक एक भिखारी ब्राह्मण रहता था उसके घर जन्मे थे। गरीब कुल में जन्म लेने के कारण सातों भीख मांगने के लिए जाते थे पर कोई भी उनको घर की चौकी पर भी बैठने नहीं देते थे। धक्का देकर भगा देते थे। इस प्रकार सभी पुत्र एक गाँव से दूसरे गाँव भिक्षा मांगते फिरते रहते थे। एक बार वे पाटलीपुर नगर में गए। वहाँ उन्होंने राजा और प्रधानमन्त्री के पुत्रों को देखा। बड़े भाई ने अन्य भाइयों से कहा, ''हम भी मनुष्य हैं और वे भी मनुष्य हैं फिर दोनों के बीच इतना अन्तर क्यों है?'' छोटे भाई ने कहा, ''पूर्वकाल में उन लोगों ने बहुत पुण्य किया होगा इसलिए वे उसका फल भोग रहे हैं और हम पुण्यहीन हैं इसलिए हमें घर-घर जाकर भीख मांगनी पड़ती है।'' वे लोग घूमते-घूमते वन में गए। वहाँ एक साधु मुनिराज काउसग्ग ध्यान में खड़े थे। ध्यान पूर्ण होने पर उन्होंने इन सात भाइयों को देखा। उनके प्रति दयाभाव दिखाते

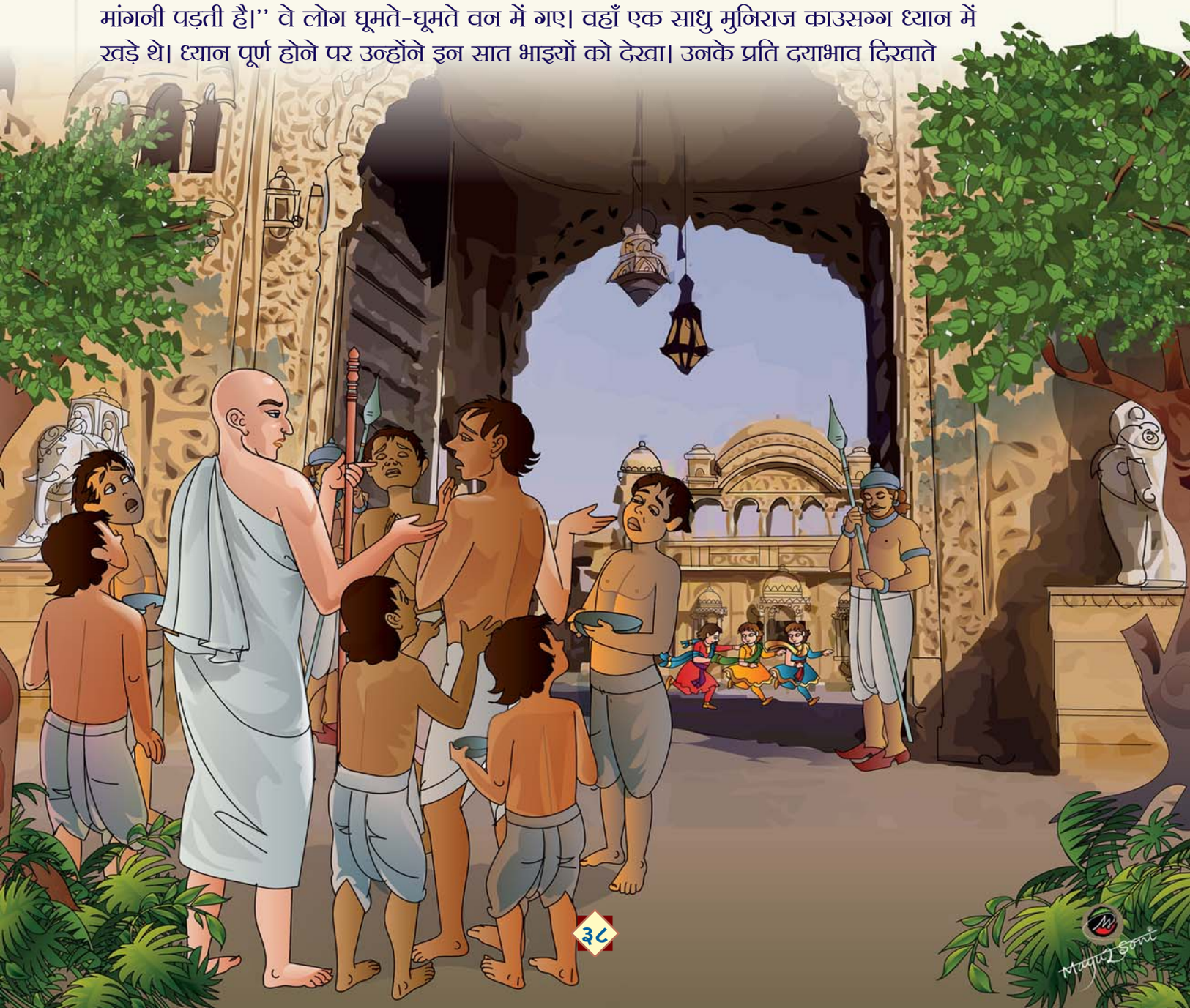

हुए उन्हें धर्म का उपदेश दिया। इससे वे सातों भाई वैराग्य पाकर, दीक्षा लेकर, शुद्ध चारित्र का पालन करके देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ से च्यवित होकर उन्होंने आपके घर पुत्र के रूप में जन्म लिया।

वैताढ्य पर्वत पर एक भील विद्याधर शाश्वत जिन प्रतिमा की पूजा कर रहा था। मरकर वह सौधर्म देवलोक में देवता हुआ। वहाँ से च्यवित होकर लोकपाल नामक तुम्हारा आठवां पुत्र हुआ। ये चार पुत्रियाँ पूर्वभव में राजा विद्याधर की पुत्रियाँ थीं। युवावस्था में वे बगीचे में खेलने के लिए गईं। वहाँ उन्होंने साधु को देखा। साधु ने उनसे कहा कि तुम्हारी आयु बहुत कम है अतः धर्म करो। तुम्हारी मात्र आठ प्रहर की आयु ही बची है। (एक प्रहर अर्थात् तीन घण्टे, आठ प्रहर यानी चौबीस घण्टे)। अतः तुम सब ज्ञानपंचमी का व्रत करो। घर लौटकर इन पुत्रियों ने पच्चक्खाण लिया। अपनी आत्मा को धर्म से भावित किया। वे एक स्थान पर बैठी थीं तब विद्युत्पात हुआ।(बिजली गिरी)। इस विद्युत्पात के कारण चारों पुत्रियाँ मरकर देवता हुईं और वहाँ से च्यवित होकर उन्होंने तुम्हारे घर पुत्रियों के रूप में जन्म लिया।'' ये सारी बातें सुनकर राजा और रानी को जातिस्मरण ज्ञान हुआ और अपने पूर्वभवों को देखकर वे वैराग्य को प्राप्त हुए। सभा भी वैराग्यवासित हुई।

एक बार रानी के दादा, भगवान श्री वासुपूज्यस्वामी पधारे तब राजा अशोक और रानी रोहिणी अपने परिवार सहित भगवान की वन्दना करने के लिए गए। वहाँ भगवान के श्रीमुख से देशना का श्रवण किया। वैराग्य को प्राप्त करके घर लौटे और अपने पुत्र को राज्य का संचालन सौंपकर राजा और रानी दोनों ने दीक्षा ग्रहण की, उत्कृष्ट साधना की और कालक्रम से दोनों मोक्ष सिधारे।

अतः हे भव्य जीवों! इस लोक में सुख-समृद्धि और परलोक में सिद्धिगति के सुख को देने वाले इस तप की भावपूर्वक आराधना करनी चाहिए।

चैत्री पूर्णिमा पर्व

गिरिराज पर रायण वृक्ष के नीचे सुर, असुर, इन्द्र एवं चक्रवर्तियों द्वारा पूजित श्री आदिनाथ भगवान का समवसरण रचा गया था - ऐसा शास्त्रों में बताया गया है। उस वृक्ष के नीचे प्रभु के पदचिह्न उनकी स्मृति के रूप में अभी भी विद्यमान हैं। इस गिरिराज पर सूर्यदेव द्वारा निर्मित सूरजकुण्ड है, उसके जल के प्रभाव से कुष्ठ आदि रोगों का नाश होता है।

इस शत्रुंजय तीर्थ से माता कुन्ती सहित बीस करोड़ मुनिवरों के साथ पाण्डव मोक्ष में गए थे।

रामचन्द्र जी तीन करोड़ मुनिवरों के साथ सिद्धि प्राप्त करके मोक्ष में गए थे। इस गिरिराज पर इस अवसर्पिणी के सभी (चौबीस) भगवान के कुल १४५२ गणधर भगवन्तों के पदचिह्न हैं।

श्री आदिनाथ भगवान ने जब दीक्षा अंगीकार की तब उन्होंने अपने भरत आदि सौ पुत्रों को राज्य बाँट दिये थे। उस समय उनके पुत्रों की भाँति नमि और विनमि वहाँ उपस्थित नहीं थे। बाद में जब वे आए तब भरत राजा ने उनसे कहा कि, 'आप हमारी सेवा करोगे तो भेंट के रूप में राज्य दूँगा।' पर उन्होंने भरत की बात का अस्वीकार किया और राज्य लेने के लिए भगवान के पास गए। उस समय भगवान काउस्सग्ग ध्यान में थे। ध्यान में भगवान को मच्छर आदि कीट का उपद्रव न हो इसलिए वे उनके आस-पास का स्थान साफ करने लगे। रोज प्रातःकाल में वे भगवान को वन्दन करके कहते थे कि, 'भगवान आप हमें राज्य प्रदान कीजिए।' इस प्रकार भगवान की

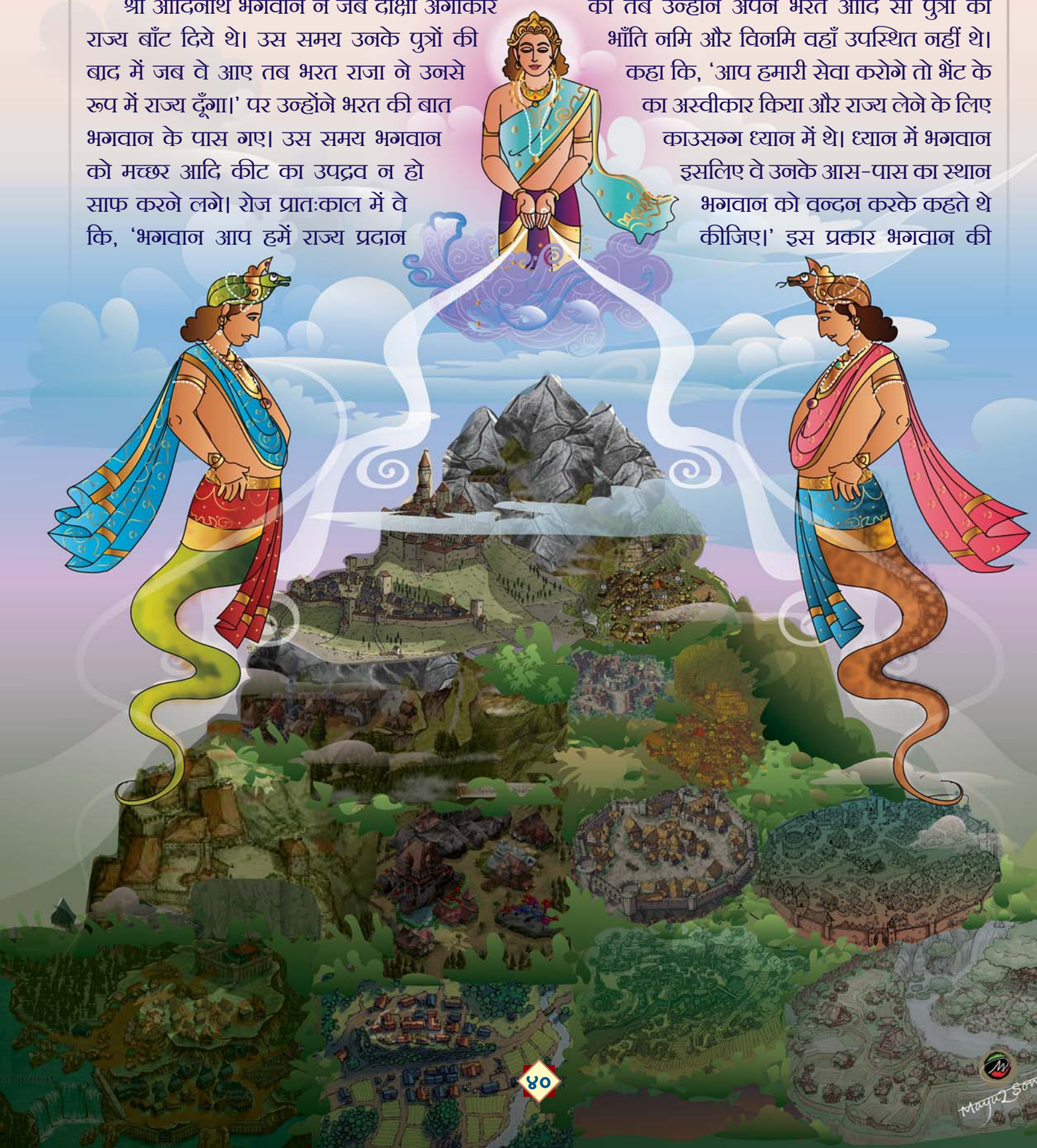

दिन-रात सेवा करते हुए उनका काउसग्ग पूर्ण होने की प्रतीक्षा करते हुए वे वहाँ रहने लगे। भगवान की भक्ति कभी निष्फल नहीं होती।

एक बार धरणेन्द्र देव भगवान को वन्दन करने के लिए पधारे। उन्होंने एकाग्रचित्त से विनयपूर्वक भगवान की सेवा करते हुए नमि और विनमि को देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए। उन दोनों को विद्याएँ प्रदान की और उन्हें वैताढ्य पर्वत पर स्थित विद्याधर राज्य का स्वामी बना दिया। दोनों ने लम्बे समय तक विद्याधर पद को भोगा और कालक्रम से वैराग्य भाव से बोधित होकर समग्र राज्य का त्याग करके दीक्षा ग्रहण कर ली। विचरण करते हुए वे श्री शत्रुंजय महातीर्थ आकर भगवान को नमस्कार करके कर्मों का क्षय करके दो करोड़ मुनिवरों के साथ मुक्ति का सुख पाकर सिद्धशिला गए।

ऐसे महिमावन्त सिद्धगिरि से चैत्र पूर्णिमा के दिन श्री आदिनाथ भगवान के प्रथम गणधर श्री पुण्डरिकस्वामी भी ५ करोड़ मुनियों के साथ मोक्ष सिधारे। उपरान्त अनेक जीव चैत्री पूनम की आराधना करके मोक्ष गए।

श्री भरत महाराजा के पुत्र श्री पुण्डरिक ने भगवान से धर्म श्रवण करके प्रतिबोध प्राप्त किया और भगवान से दीक्षा ग्रहण करके उनके प्रथम गणधर हुए। पुण्डरिकस्वामी एक बार पाँच करोड़ मुनिवरों के साथ विहार करते हुए सौराष्ट्र देश पधारे। वहाँ अनेक राजा, सेठ, शाह और व्यापारी आदि उन्हें वन्दन करने के लिए वहाँ गए। गणधर भगवान ने उनको देशना प्रदान की। देशना सुनकर एक विधवा कन्या और एक स्त्री रोते हुए श्री

पुण्डरिक स्वामी के पास गई। गुरु को नमस्कार करके उसने पूछा कि, 'हे भगवान! इस कन्या ने पूर्वभव में ऐसा क्या पाप किया होगा कि यह विवाह मण्डप में ही विधवा हो गई? हस्तमिलाप के बाद तुरन्त ही उसका पति परलोक सिधार गया।' गुरुदेव ने फरमाया कि अशुभ कर्म का फल अशुभ ही होता है। वह इस प्रकार है, तुम सुनो:

जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह में विश्वविख्यात मनोहर नगर था, जिसका नाम चन्द्रकान्त था। वहाँ प्रसिद्ध

गुणवान समरसिंह नामक एक राजा राज्य करता था। उसकी धारिणी नामक रानी थी। उसी नगर में धनावह नामक धनसम्पन्न सेठ रहता था। वह जिनेश्वर प्रभु का परम श्रावक था। इस सेठ के दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम कनकश्री तथा दूसरी का नाम मित्रश्री था। सेठ उन दोनों को अच्छी तरह से रखते थे। वे दोनों के साथ एक-एक दिन के अन्तर से बारी-बारी से रहता था। एक बार कनकश्री, मित्रश्री के क्रम में पति के पास गई। पति ने उसे मर्यादा का भंग नहीं करने के लिए समझाया पर वह मानने के लिए तैयार ही नहीं थी। इसलिए वह क्रोधित होकर अपने घर चली गई और मन ही मन मित्रश्री के प्रति क्रोधवश द्वेष करते हुए पति से कैसे वियुक्त किया जाए, ऐसा सोचने लगी। उसने मन्त्र तन्त्र आदि के प्रयोगों के द्वारा मित्रश्री के देह में भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि का प्रवेश करवाया। मित्रश्री का भी पूर्वभव का कोई दुष्ट कर्म उदित हुआ होगा इसलिए कनकश्री के दुष्ट प्रयोग सफल होने लगे। मित्रश्री के दुष्ट कर्म के उदय से सेठ ने परवश होकर उसका त्याग किया। मित्रश्री का त्याग होने से और कनकश्री का पूर्ण स्वीकार हो जाने से कनकश्री प्रसन्न हो गई। कुछ समय के बाद कनकश्री का आयुष्य पूर्ण होने पर वह मृत्यु को प्राप्त हुई और उसने तुम्हारे घर पुत्री के रूप में जन्म लिया। पूर्वभव में उसने मित्रश्री का पति से वियोग कराया इसलिए इस भव में वह विषकन्या हुई और विवाह मण्डप में ही पति की मृत्यु के कारण विधवा हुई।

माता ने गुरू भगवन्त को विधवा पुत्री को दीक्षा प्रदान करने के लिए कहा, तब 'तुम्हारी पुत्री अतिशय चंचल है इसलिए दीक्षा लेने के योग्य नहीं है। याद रखना, दीक्षा अयोग्य नहीं है।' ऐसा कहा। तो माता ने कहा कि, 'यदि पुत्री दीक्षा नहीं ले सकती, तो उसके द्वारा करने योग्य किसी धर्म के बारे में बताइए।' तब गणधर भगवन्त ने ज्ञान के बल से उसे चैत्री पूर्णिमा की आराधना करने के लिए कहा। यह सुनकर गुरु के ज्ञान के प्रभाव से प्रेरित उस विधवा कन्या को व्रत धारण करने की इच्छा हुई। गणधर भगवन्त ने उस कन्या से कहा कि, 'श्री सिद्धाचल तीर्थ शाश्वत तीर्थ है। इस महातीर्थ पर अनन्त भव्य आत्माएँ सिद्धगति को प्राप्त हुई हैं। सारे तीर्थों में यही तीर्थ मुख्य तीर्थ है। इसके शत्रुंजय आदि इक्कीस नाम हैं। इन नामों से शत्रुंजय महातीर्थ का ध्यान धरो। चैत्री पूनम के दिन शुद्ध भाव से उपवास करो, जिनमन्दिर में स्नात्र महोत्सव आदि शुभ कार्य करो, व्याख्यान श्रवण के लिए भी जाओ। गिरिराज के पट्ट को उच्च स्थान पर स्थापित करके उसकी सच्चे मोती, अखण्ड अक्षत आदि से पूजा करके देववन्दन करो। पारणे में सुपात्र दान का लाभ लो। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक हर वर्ष इस व्रत का पालन करो। यथाशक्ति शासन की शोभा में वृद्धि हो, उत्साहवर्द्धन हो इसलिए व्रत का उद्यापन करो।

इस व्रत की आराधना करने से निर्धन धनिक बनता है, कुमार-कुमारिका को सुन्दर साथी, सौभाग्य, कीर्ति, देवगति के सुख मिलते हैं; रोग, शोक, वैधव्य से छुटकारा होता है, अप्रीति, मृत सन्तान का जन्म, पराधीनता इत्यादि कर्म के अनिष्ठ फल इस व्रत से नामशेष हो जाते हैं और मोक्षसुख की प्राप्ति होती है।' इस प्रकार गणधर भगवन्त ने व्रत करने के लिए कहा।

कन्या का मन विषय विकारों से मुक्त हुआ, उसने धर्म में स्थिर होकर हर वर्ष व्रत करते हुए पन्द्रह वर्ष में पूर्ण करके व्रत का उद्यापन किया। उस कन्या ने गणधर भगवन्त का ध्यान धरकर श्री सिद्धाचल जी की यात्रा करते हुए श्री आदिनाथ भगवान का जाप करके अन्त समय में अनशन स्वीकार करके कालधर्म को प्राप्त किया और प्रथम सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ पुण्य के योग से दैवीय सुख भोगकर वहाँ से च्यवित (मृत्यु को प्राप्त) होकर महाविदेह क्षेत्र में सुकच्छ विजय में वसन्तपुर नगर में राजा नरचन्द्र के राज्य में श्री ताराचन्द सेठ के घर तारा नामक पत्नी की कोख से पुत्र के रूप में जन्म लिया।

वहाँ उसका नाम पूर्णचन्द्र रखा गया। वह बहत्तर कलाओं में प्रवीण हुआ। वह पन्द्रह करोड़ द्रव्य का स्वामी, पन्द्रह पत्नियों का पति और पन्द्रह पुत्रों का पिता हुआ। इस भव में भी उसने चैत्री पूनम की आराधना की और अन्त में श्री जयसमुद्र गुरु से दीक्षा अंगीकार करके केवलज्ञान प्राप्त किया और मोक्ष सुख को प्राप्त किया। इस प्रकार कन्या का जीव चैत्री पूनम की आराधना करके तीसरे भव में मोक्ष को प्राप्त हुआ।

अक्षय तृतीया पर्व

यह कथा प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भगवान के जीवन के साथ जुड़ी हुई है। भगवान अपने पूर्व के किसी भव में खोळ में बार-बार मुँह डालकर खाना खाते हुए वृषभ के मालिक को देखा। इसलिए उस वृषभ के मुख पर छींका (वस्त्र/चर्म का बन्धन) बाँधने की सलाह दी। ताकि बैल बार-बार किसी भी जगह पर मुँह

ना डाले। इस प्रकार बैल को खाने में अन्तराय देने से कर्म बंध हो गया और वह कर्म उनके तीर्थंकर के भव में उदित हुआ। इसलिए भगवान दीक्षा ग्रहण करने के बाद जब भी भिक्षा हेतु निकले तब किसी को पता नहीं चलने से वे भगवान को वस्त्र, अलंकार, कन्या आदि देते थे। पर भगवान योग्य भिक्षा नहीं मिलने के कारण भिक्षा लिए बिना ही वापस लौट जाते थे। प्रभु के मन में तनिक भी दीन भाव नहीं था। वे तो संयमभाव में ही स्थिर थे। इस प्रकार प्रभु के गोचरी के बिना बारह-बारह महीने बीत गए। बारह महीने के ये उपवास इस लोक में वर्षीतप के रूप में प्रसिद्ध हुए।

आदीश्वर भगवान इस प्रकार विचरण करते हुए हस्तिनापुर पधारे। उस समय वहाँ राजकुमार श्री श्रेयांसकुमार थे। उन्होंने एक बार स्वप्न में देखा कि, ''मैंने काले मेरु पर्वत को अमृत के कलश से सिंचित किया, इसलिए वह अतिशय शोभायमान दिखाई देने लगा।''

श्री सुबुद्धि नामक नगरसेठ ने भी स्वप्न देखा कि, ''सूरज के मण्डल में से हजार किरणें निकल गई और श्री श्रेयांसकुमार ने पुनः वहाँ स्थापित किया। इसलिए सूर्यमण्डल अतिशय शोभायमान होने लग।''

राजा ने भी स्वप्न देखा कि, ''शत्रु के सैन्य बल के साथ युद्ध करते हुए एक महापुरुष श्री श्रेयांसकुमार की सहायता से विजयी हुए।''

दूसरे दिन राजसभा में राजा, युवराज और नगरसेठ की बैठक हुई। तीनों ने अपने द्वारा देखे गए सपनों के बारे में बात की। यह सुनकर राजा ने कहा कि, ''आज अवश्य श्री श्रेयांसकुमार को कोई बड़ा लाभ होना

चाहिए।'' सभा समाप्त हुई। श्रेयांसकुमार अपने महल के झरोखे में बैठे थे। उसी समय उन्होंने लोगों का ऐसा कोलाहल सुना कि 'भगवान कुछ भी लेते नहीं हैं।' यह सुनकर उन्होंने भगवान को देखा और विचार करने लगे कि ऐसा दृश्य तो मैंने इससे पूर्व कहीं देखा है। इस प्रकार विचार करते हुए उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ। ज्ञान से उन्होंने जाना कि, ''मैं पूर्वभव में भगवान का सारथि था। भगवान ने जब दीक्षा ली तब उनके साथ मैंने भी दीक्षा ली थी। उस समय श्री वज्रसेन जिनेश्वर देव ने कहा था कि यह वज्रनाभ भरतक्षेत्र में पहले तीर्थंकर होंगे। ये ही वे भगवान हैं।''

श्रेयांसकुमार को जब जातिस्मरण ज्ञान हुआ उसी समय एक मनुष्य ने उनके पास जाकर गन्ने के रस से भरे घड़ों का सुन्दर उपहार दिया। अतः श्रेयांसकुमार ने भगवान से विनती की कि, 'हे प्रभु! रस की यह भिक्षा कल्प्य है। आप इसे स्वीकार कीजिये। और यह सुनकर प्रभु ने अपने दोनों हाथ फैलाये और श्रेयांसकुमार ने भगवान को रस वोहराया। उस रसधार की एक भी बून्द नीचे नहीं गिरते हुए शिखा के रूप में ऊपर की ओर बढ़ रही थी। ऐसी लब्धिवाले प्रभु ने करपात्री में रस वहोरकर बारह-बारह महीने के उपवास का पारणा किया।'

भगवान ने जब गन्ने के रस से वर्षीतप (बारह महीने का तप) का पारणा किया तब पंचदिव्य प्रगट हुए। वसुधारा की वृष्टि हुई, वस्त्र की बरसात हुई, आकाश में देवों ने दुन्दुभि का नाद किया, सुगन्धित जल और पुष्पों की वृष्टि हुई। आकाश में ''अहोदानं अहोदानं''की घोषणा हुई। तापस तथा अन्य लोग वहाँ इकट्ठा हुए। श्रेयांसकुमार ने सबको कहा कि, ''सद्गति प्राप्त करने के लिए साधुओं को कल्पे ऐसा दान दिया जाना चाहिए।'' लोगों ने श्रेयांसकुमार से पूछा कि, ''आपको कैसे पता चला?''तब श्रेयांसकुमार ने भगवान के साथ अपने आठ भव के सम्बन्ध के बारे में बताया, जो इस प्रकार है:

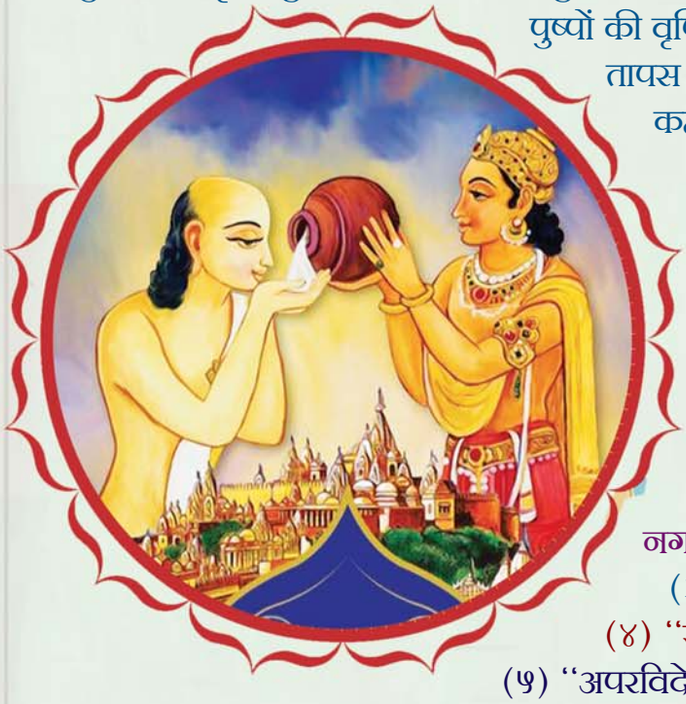

(१) ''जब भगवान ईशान देवलोक में ललितांग कुमार देव थे, तब मैं उनकी निर्नामिका नामक स्वयंप्रभा देवी था।''

(२) ''पूर्वविदेह में पुष्पकलावती विजय में लोहार्गल नगर में भगवान वज्रजंघ थे, तब मैं उनकी श्रीमती स्त्री था।''

(३) ''उत्तरकुरु में भगवान युगलिक थे, मैं युगलिनी था।''

(४) ''सौधर्म देवलोक में हम दो मित्र देव थे।''

(५) ''अपरविदेह में भगवान वैद्यपुत्र थे, मैं जीर्ण सेठ का पुत्र केशव था जो उनका मित्र था।''

(६) ''बारहवें अच्युत देवलोक में हम दोनों देव थे।''

(७) ''पुण्डरिकिणी नगर में भगवान श्री वज्रनाभ चक्रवर्ती थे, मैं उनका सारथि था।''

(८) ''सर्वार्थ विमान में हम दोनों देव थे।''

(९) और इस नौवें भव में ''मैं भगवान का प्रपौत्र हूँ, यानी श्री बाहुबली के पुत्र सोमप्रभ का मैं पुत्र हूँ।''

इस प्रकार श्रेयांसकुमार और ऋषभदेव भगवान के बीच आठ भव का सम्बन्ध सुनकर लोगों ने स्तुति की, कि हमें श्री आदिनाथ भगवान जैसा पात्र, गन्ने के रस जैसा निर्दोष द्रव्य और श्री श्रेयांसकुमार जैसा भाव मांगने से मिलता हो तो हमें प्राप्त हो।

दान के प्रभाव से श्री श्रेयांसकुमार का आँगन धन से भर गया। साढ़े बारह करोड़ सोनैयों की वृष्टि हुई। जगत् में श्री श्रेयांसकुमार की यशोवृद्धि हुई और उन्हें निरूपम सुख की प्राप्ति हुई।

भगवान ने (गुजराती) फाल्गुन वदी अष्टमी के दिन दीक्षा अंगीकार की थी, इसलिए उस दिन से वर्षीतप का प्रारम्भ होता है और समभाव से तप करके वैशाख सुदी तृतीया के रोज पारणा किया। हमारे पास अखण्ड बारह महीने तक तप करने की शक्ति नहीं है, इसलिए उनके स्मरण रूप में एकान्तर उपवास आदि से वर्षीतप करने की प्रणालिका जारी है। विधिवत् आराधना करके अक्षय सुख, मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए अक्षय तृतीया पर्व की आराधना करनी चाहिए।

पर्युषण महापर्व (क्षमापना पर्व)

- प्राचीनकाल में भा.सु.५ और अब भा.सु.४ को ८वा दिन (संवत्सरी पर्व) आए उस तरह की जाती आठ दिन की आराधना...कषायों, संक्लेशों, पापों तथा दोषो के निवारण द्वारा आत्मशुद्धि की विशिष्ट साधना...
- उभयटंक प्रतिक्रमण, परमात्मा की अष्ट-प्रकारी पूजा, कल्पसूत्र का श्रवण, अमारिप्रवर्तन, साधर्मिक भक्ति, अट्ठम-अट्ठाइ का तप, चैत्यपरिपाटी, क्षमापना, यथाशक्ति सुकृत-दान, ब्रह्मचर्य का पालन करे...
- शक्य हो तो ६४ प्रहरी पौषध तथा बारसासूत्र का श्रवण...

नवपद ओळी महापर्व (शक्ति पर्व)

- आसो सुद तथा चैत्र सुद के ९-९ दिन, इस तरह कुल ४.५ वर्ष में ९ बार के ९ यानी ८१ दिनों की आयंबिल तप की विशिष्ट आराधना...
- आ.सुद ७ से आ.सुद १५ तथा चैत्र सुद ७ से चैत्र सुद १५ तक आयंबिल द्वारा की जाती आराधना, अतिपवित्र और अतिशक्तिशाली ऐसे अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप ये नौ पद की उपासना के लिए क्रमशः १२, ८, ३६, २५, २७, ६७, ५१, ७०, ५०, साथिया, खमासमणा, प्रदक्षिणा, लोगस्स का काउसग्ग करें...
- क्रमशः ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं / सिद्धाणं / आयरियाणं / उवज्झायाणं / लोए सव्वसाहूणं / दंसणस्स / नाणस्स / चारित्तस्स/तवस्स की २० नवकारवाली गीनें...

छ गाउ यात्रा पर्व (भक्ति पर्व)

जैनेतरों में 'ठेबरीया मेळा' से प्रसिद्ध

- फा.सुद १३ को ८.५ करोड मुनिओं के साथ मोक्ष पधारें शांब-प्रद्युम्न की अनुमोदनार्थे छ गाउ गिरिराज की सामुहिक यात्रा...
- चंदनतलावडी पास सिद्धशिला पर ९-लोगस्स का काउसग्ग...
- भाडवा डुंगर की स्पर्शना तथा आदपुर के पास सिद्धवड की स्पर्शना तथा पालभक्ति...

प्रभुवीर जन्मकल्याणक पर्व

(विश्व में महावीरजयंति से प्रसिद्ध...जैनों के लिए कल्याणक)

- चैत्र सुद १३ को प्रभुवीर की भक्ति...
- यथाशक्ति पूजा, अनुकंपा, जीवदया, रथयात्रा द्वारा शासन प्रभावना करें...
- कल्याणक का ध्यान धरें, १२-साथिया, खमासमणा, काउसग्ग करें २० नवकारवाली 'श्री महावीरस्वामि अर्हते नमः' की गीनें...

शासनस्थापना पर्व

- वै.सु.११ के शासन स्थापना दिन निमित्त प्रभुवीर तथा गुरु गौतम, गुरु सुधर्मास्वामिजी का स्मरण करें...
- शासन प्रभावना के कार्य, शासन वंदना, जयउ सव्वण्णु सासणं का जाप करें...

दिवाळी/नूतन वर्ष

- प्रभुवीर के निर्वाण कल्याणक के महोत्सव निमित्त आ.व.०)) के दिन दिपाली पर्व की आराधना तथा श्री गौतमस्वामि के केवलज्ञान के महोत्सव निमित्त का.सु.१ के दिन नूतन वर्ष की आराधना...
- ४८ घंटों की अंतिमदेशना निमित्त चउविहार छट्ठ की (आ.व. १४/०)) की आराधना)...
- उत्तराध्ययन सूत्र तथा दिवालीकल्प के प्रवचनों का श्रवण...
- नूतन वर्ष (का.सु.१) के दिन सुबह नवस्मरण तथा गौतमस्वामिजी के रासका श्रवण...
- दिवाली की मध्यरात्रि में प्रभुवीर का देववंदन तथा गौतमस्वामिजी का देववंदन...
- रात्रि के प्रथम दो प्रहर में - श्री महावीरस्वामि सर्वज्ञाय नमः
- रात्रि के तृतीय प्रहर में - श्री महावीरस्वामि पारगताय नमः
- रात्रि के अंतिम प्रहर में - श्री गौतमस्वामि सर्वज्ञाय नमः की २०-२०-२० नवकारवाली गीनें...

चोमासी आराधना पर्व

- कारतक चोमासी की आराधना निमित्त का.सु.१४/१५ को छट्ठ करें...
- फागण चोमासी की आराधना निमित्त फा.सु.१४/१५ को छट्ठ करें...
- अषाढ चोमासी की आराधना निमित्त अ.सु.१४/१५ को छट्ठ करें...
- पौषध, उभयटंक प्रतिक्रमण, प्रवचनश्रवण वगेरे करें...
- २४ तीर्थाधिपति की आराधना निमित्त दोपहर में देववंदन करें...

जीवन को खुशीयों
के रंगों से भरने के साथ कर्म
की धूळ से मुक्त करे, वह पर्व...
जीवन में पुष्प समान सुवासयुक्त और
सौंदर्ययुक्त बनाने के साथ दुर्गुण की
दुर्गंध से मुक्ति दिलाएँ, वह पर्व...
इस भव को प्रेम और प्रसन्नता से भरने के साथ परभव
को पुण्य और परिणति से भरे, वह पर्व...
बस ऐसे अनेक आनंददायक, शातादायक, शांतिदायक
पर्वो को कथा के माध्यम से जानने और मानने
पढना हि रहा पुस्तक
पर्वे-पर्वे कथा...